Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :—

वार्षिक : 80 रुपये

अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता....................

....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

क्या विश्वयुद्ध होकर ही रहेगा और यह दुनिया . . .?

चाहे कोई भी देश क्यों न हो आज आंतरिक अथवा बाह्य मामलों में उलझा हुआ है. विश्वभर में लगातार पनप रहे इस तनावपूर्ण वातावरण में जीवन की गतिविधि क्या है और क्या होनी चाहिए जैसे सवाल को रेखांकित करने के लिए पढ़िए, विभिन्न कहानियां एवं रचनाएं—

काशीनाथ सिंह, रामसरूप अणखी, श्रीनिवास जोशी आदि की कहानियां.

- **समय :** 'किसी देश के किसी शहर में' शीर्षक-योजना के तहत **रमेश उपाध्याय** की छठी कहानी.
- **आधा शहर : उषा प्रियवंदा** की कहानी की समापन किस्त.
- **नपुंसक : मधुकर सिंह** की उपन्यासिका की समापन किस्त.
- **आते हुए लोग—बीना सिंह** की कहानी—**तमाशाई.**

● **बारूद की छांव में कला और मरजीना का देश**

ईरान और इराक के बीच युद्ध! ईरान क्या चाहता है और इराक की इच्छा क्या है? राजसत्ता और जनसत्ता की संघर्ष शक्ति कितनी होती है?—पढ़िए हाल में इराक जाकर वापस आये **नासिरा शर्मा** और **कन्हैयालाल नंदन** की कलम से लिखे गये दो रिपोर्ताज कि. . .युद्ध के दौरान इराक में लोग किस जिजिविषा से साक्षात्कार कर रहे हैं? बच्चे क्या सोचते हैं, नेता क्या चाहते हैं, मौलवियों की सोच क्या है, सेना क्या कुछ कर रही है और राजनीति क्या गुल खिला रही है?

- **अगस्त से राष्ट्रीय नाट्य-विद्यालय फिर खुल रहा है 'भरतमुनि के वंशधर' में सूत्रधार का आलेख**

सारिका

1 अगस्त, 1984

● **तुलसीदास चंदन घिसें!, मथुरादास की डायरी, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं, गजलें आदि सभी स्थायी स्तंभ**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३६१; १६ से ३१ जुलाई, १९८४

कहानियां

9 आधा शहर : उषा प्रियंवदा
22 तुरुप चाल : नरेंद्र निर्मोही
31 भगवान का घर : शेरवुड एंडरसन
41 आक्रोश : गुणवंती त्रिवेदी
42 एक और अहल्या : भगवतीशरण मिश्र
47 आग : रमेश उपाध्याय
56 अंधेरी गली का सफेद मकान : बाला दुबे
62 उतरा हुआ कोट : यश गोयल
65 वक्त का जंगार : मोतीलाल जोतवाणी

धारावाही उपन्यास

34 गम रोजगार के : ममता कालिया
50 नपुंसक : मधुकर सिंह

विशेष आयोजन

16 पीढ़ियां : आमने-सामने :. . और उसके बाद चिरागों में रोशनी न रही! : बटरोही

अन्य आकर्षण

28 तुलसीदास चंदन घिसैं! : [हरिशंकर परसाई
55 अध्यक्षता : इब्ने इंशा
60 मथुरादास की डायरी : मथुरादास
67 भरतमुनि के वंशधर

लघु रचनाएं

11 द्रुत गति से : डा. प्र. कु. सिंह
13 निम्न स्तर : श्याम सुंदर अग्रवाल
24 ग़ज़ल : सोम ठाकुर
36 ग़ज़ल : शबनम गोरखपुरी
38 नागरिक : जगदीश कश्यप
44 औकात : नरेंद्र आवारा
64 रिश्वत : सुखबीर

स्थायी-स्तंभ

6 आपकी बात
39 तस्वीर बोलती है
46 और भुलाये न बने
70 पखवारे की पुस्तकें
73 हलचल

● कई पृष्ठों पर 'चलते-चलते' एवं 'कार्टून' आदि.

▣ **आवरण पारदर्शी :** विजय अग्रवाल, सुनील सक्सेना

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

▣ संपादकीय पता : सारिका, 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

पहली और दूसरी कहानी

● **पवन शर्मा, देलाखारी, (छिंदवाड़ा)**

और अंकों की तरह मैंने **'सारिका'** : अंक-358 खरीदा. मालूम था कि यह अंक **'पुरस्कार विशेषांक'** है. बड़ी उत्सुकता थी मन में यह अंक पढ़ने की. क्षण-भर तो मुखपृष्ठ ही देखता रहा. बहुत कुछ कह गयी चंचल की आवरण कलाकृति.

प्रथम पुरस्कृत कहानी—**'इतिकथा-अथकथा'** (महेश कटारे) ने आज के पंचतंत्र की जिस तरह बखिया उधेड़ी है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है. पुरस्कृत कहानियों में सम्मान पुरस्कार विजेता कहानी तीन—**'तुम्हारे बाद सौमित्र दा'** (गौतम सान्याल) ने संजीव की कहानी **'आपरेशन जोनाकी'** की याद ताजा करा दी.

आपने पुरस्कार विशेषांक की प्रत्येक कहानी के चयन में पूरा-पूरा न्याय किया है. यह अंक तो हमेशा के लिए बहुत ही संभालकर रखना पड़ेगा.

पहली बार लिख रही हूं

● **अजीत कौर, सुल्तानपुर (उ. प्र.)**

'सारिका' की लगभग नियमित पाठिका हूं. लेकिन अब तक कोई भी टिप्पणी करने की आवश्यकता इसलिए नहीं पड़ी क्योंकि सामान्य अंकों में भी **'सारिका'** संतुष्ट कर देती थी. लेकिन **'पुरस्कार विशेषांक'** की प्रतीक्षा समाप्त कर सिर्फ निराशा हाथ लगी. लगा जैसे कुछ पाने की उम्मीद हट गयी, कुछ खोने में दर्द का अहसास हुआ और उसी तिलमिलाहट को पहली बार शब्दों में बांध रही हूं.

संपादकीय वक्तव्य के अनुसार दस हजार कहानियों में से चुनी गयी सोलह कहानियों में यदि सचमुच यही कुछ निकला है तो मुझे आज की रचनात्मक प्रवृत्ति पर बेहद निराशा हुई है. फिर भी इस अंक में कुछ कहानियों पर **प्रेम जनमेजय,** उपन्यासों पर **रमाकांत** और साहित्यिक गतिविधियों पर **दिविक रमेश** का लेख सार्थक लगा.

सपाट बयानी की हद तक पहुंची हुई कहानी **'तुम्हारे बाद सौमित्र दा'** (गौतम सान्याल) कुछ हद तक नक्सलवादी आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं के इर्दगिर्द के माहौल को परखने की कोशिश करती है लेकिन कहानी में चुस्ती के अभाव के कारण प्रस्तुति अप्रभावी हो गयी है.

'किसी और का दुख' (जितेंद्र रघुवंशी) तथा **'दो उंगुलियां'** (सरोज दुबे) की कहानियां सिर्फ दर्द चीरती रह गयी हैं. शमीम की अनातोली के प्रति अति भावुकता उस पूरे यूरोपीय माहौल में अस्वाभाविक लगती है जबकि अनातोली का चरित्र उसके स्वयं के प्रति अति संवेदना जगाने लायक नहीं है. इसी तरह सरोज दुबे ने अपनी सीमित अभिव्यक्ति क्षमता में एक छोटी-सी घटना को रूप देना चाहा है. सास का व्यवहार पूरी कहानी में उसके प्रति नफरत ही पैदा करता है. अंत में उसके प्रति सहानुभूति अर्जित करने में लेखिका को नाटकीय दौर से गुजरना पड़ा है. कहानियों में **'मकान'** (रंजन जैदी), **'आक्रांत'** (प्रियंवद) ने प्रभावित किया, इसलिए कि शिल्पगत निखार के साथ कहानी में पर्याप्त कसाव है. काफी हद तक इन कहानियों में मध्य का निर्वाह हो गया है. हां **'आक्रांत'** का अंत कुछ काल-चिंतन के पैटर्न पर आ जाने की वजह से प्रभाव नहीं छोड़ पाया है. जबकि समाज में हो रहे दरिंदगी के नंगे नाच और जंगल के वहशीपन में समरूपता पैदा करने प्रियंवद पूरी तरह सफल रहे हैं. **'मकान'** में बुर्जुआ संस्कृति और सड़ी-गली परंपराओं के प्रति अतिरेक मोह का जीवंत वर्णन है. जमाने की रफ्तार की धार पर प्रगतिशील विचार और अपनी बुर्जुआ परंपराओं के प्रति मोह के बीच फंसे शेख बहानुद्दीन का अंत पूरी तौर पर बुर्जुआ संस्कृति पर प्रहार करता है. **'इतिकथा-अथकथा'** (महेश कटारे) एक अच्छी रचना हो सकती थी बशर्ते कथा में प्रतीकों का इस्तेमाल गड्मड्ड न हो गया होता. वैसे भी किस्सागोई शैली अपनाकर प्रतीकों का इतना जबरदस्त प्रयोग इस समय करने की कोई आवश्यकता नहीं.

लघुकथाओं ने तो निराश किया. इससे अच्छी लघुकथाएं तो **'सारिका'** अपने सामान्य अंकों में छाप चुकी है.

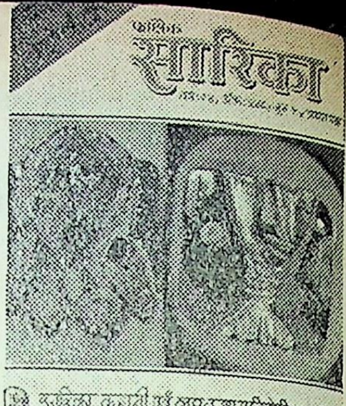

सारिका कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता विशेषांक

सारिका अंक : 358

कहानियों के मुकाबले लघुकथाएं

● **कमलेश भट्ट 'कमल', बरेली**

'सारिका' के **पुरस्कार विशेषांक** निःसंदेह पठनीय, संग्रहणीय एवं कहानी क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होते रहे हैं और यदि सच कहा जाये तो पिछले कुछ वर्षों में जितनी तृप्ति पुरस्कृत कहानियों से प्राप्त होती रही है, उतनी वर्ष भर में प्रकाशित अन्य कहानियों को मिलाकर भी नहीं मिली. निश्चय ही इसका श्रेय उन सुधी निर्णायकों को जाता है, जो कहानी के व्यापक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कहानियों का चयन एवं वर्गीकरण करते रहे हैं. पिछले वर्षों की पुरस्कृत कहानियों को देखने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कहानीकारों ने पूर्व की पुरस्कृत रचनाओं से सीधे प्रभाव से अपने को अछूता रखकर ही नये विषय और नये शिल्प के साथ कहानियां प्रस्तुत की हैं. कम से कम तीन पुरस्कार पानेवाली कहानियों के बारे में यह बात पूरी तरह सही है. रचनाकारों की इस प्रवृत्ति ने जहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी मौलिकता का परिचय दिया है वहीं उन्हें या उनकी रचनाओं से टाइप्ड हो जाने के खतरे को भी दूर बनाये रखा. महेश कटारे की **'इतिकथा-अथकथा'** इसी परंपरा को आगे बढ़ाती हुई एक सशक्त रचना बन पड़ी है. समसामयिक युगबोध को बड़ी सहजता के साथ चित्रित करते हुए गंगाराम पटेल की जिजीविषा के रूप में रचनाकार की भविष्य के प्रति आस्था भी सुदृढ़ हुई है. इस क्रम में **'तुम्हारे बाद सौमित्र दा'**, **'मकान'**, **'आक्रांत'**, **'ओ सोनकिसरी'** तथा **'शून्य का गणित'** कहानियां गिनायी जा सकती हैं. सरोज दुबे की **'दो उंगलियां'** अपेक्षाकृत हल्की रचना लगी.

कहानियों को देखते हुए लघुकथाओं का स्तर नाकाफी लगा. विशेष रूप से **'डबल बेड'** को प्रथम पुरस्कार दिये जाने का औचित्य समझ में नहीं आता. हां, सीतेश आलोक की **'बस अपने लिए'** इसकी सही हकदार लगती है. उपेंद्रप्रसाद राय की लघुकथा **'पेट के लिए'** में सब कुछ ठीक-ठाक होते हुए भी सेठ की वह हरकत बड़ी क्रूर लग जाती है जब वह मात्र चार-पांच साल की एक छोटी-सी बच्ची की कमर पर एक 'भरपूर लात' दे मारता है.

आपका क्या विचार है?

● **जितेंद्रकुमार विज, कोटा**

सारिका : अंक 358 प्राप्त हुआ. दस हजार कहानियां एवं लघुकथाएं सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता में प्राप्त होना इस बात का संकेत है कि आम व्यक्ति भी इस प्रकार की प्रतियोगिताओं में रुचि लेता है जो कि व्यावसायिक लेखन नहीं है. निर्णायक मंडल इस बात के लिए बधाई का पात्र है कि इतनी रचनाओं में से आठ कहानियां एवं लघुकथाएं पुरस्कार हेतु छांट लेना एक मोर्चे को जीत लेने से किसी भी हालत में कम नहीं है.

सभी कहानियां उच्च स्तर की थीं. **'दो उंगलियां'** सरोज दुबे की एवं लघुकथा **'डबल बेड'** दिनेश पालीवाल अत्यंत रोचक लगीं.

इस विशेषांक के बदले में स्थायी स्तंभों की कटौती करना **सारिका** के सुरुचिपूर्ण पाठकों को खलता है. आपका क्या विचार है?

जानते सब हैं मगर . . .

● **तेजबहादुर सिंह, तिरुचिरापल्ली**

लघुकथाओं ने विशेष प्रभावित किया. **'वक्तकटी'** ने अच्छा वक्त काटा और **'पेट के लिए'** उसे बार-बार सस्पैंड होते देख **'कमीशन'** की इस बेशर्मी पर बड़ी दया आयी. **'डबल बेड'** की बेड के अतीत में खोया बुढ़िया का तमतमाया हुआ शर्म से लाल चेहरा बहुत कुछ कह गया. लेकिन **'लोक कथा : तिरासी'** का 'चौरासी' में भी कोई **'समाधान'** नहीं मिला.

आज के विकृत होते समाज में (जिसे हम खुद ही विकृत करते हैं) एक व्यक्ति चाहकर भी वास्तविक मूल्यों से जूझ नहीं पाता और अपना धीरज खो बैठता है. चूंकि मैं इंजीनियरिंग का ही एक छात्र हूं, इसलिए इसे अच्छी तरह समझता हूं. इस वर्ग के प्रति सामान्य लोगों में (हालांकि हर 'विभाग' के साथ ऐसा नहीं है) जो क्षोभ उत्पन्न होता जा रहा है, उसके मूल में 'नैतिक मूल्यों का पतन' ही विशेष है. पैसे के आगे सारी मान्यताएं भूलती जा रही हैं खासकर आज की नयी पीढ़ी इससे विशेष रूप से प्रभावित है और अपनी सुरक्षा खोती महसूस कर रही है. जानकारी सभी को है लेकिन इस पतनशील मूल्यों के विरोध का साहस किसी में नहीं जुट पाता. सभी आसान रास्ता ढूंढते हैं. आखिर कब तक हम यों ही इन विषमताओं से दूर रहेंगे? एक तरफ जेहनी स्तर पर हम इस चीज को अंडरस्टैंड भी करते हैं; फिर भी सामना करने से डरते हैं. अगर हम खुद अपना पेशेंस खो बैठेंगे तो फिर दूसरों से क्या आशा रख सकते हैं.

क्या मुद्राजी बालिग हो गये

अंक 359 में श्री मुद्राराक्षस की जिज्ञासा अच्छी लगी. कृपया नामवर जी की उम्र के साथ-साथ यह भी बता दें कि क्या मुद्राजी बालिग हो गये हैं?

● **रामधन, भोपाल (म.प्र.)**

निर्णायकों में नंदन की दृष्टि

● **अजित श्रीवास्तव, वाराणसी.**

पुरस्कार विशेषांक देखा. **'अपनी बात'** के अंतर्गत कही गयी बात **'युवा मानसिकता के विद्रोही तेवरों की तलाश'** को सार्थक बनाने में यह अंक कहीं न कहीं समर्थ अवश्य है. बेसुर-ताल की बात करनेवाले लोगों के लिए यह बात खटकनेवाली हो सकती है. निर्णायकों में नंदन के दृष्टिकोण की जितनी तारीफ की जाये कम है. आज के समूचे युवा लेखन को उन्होंने यह कहकर कि **'यह आतंक के बीच जीते रहने की जद्दोजहद है'** सर्वथा मौलिक मूल्यांकन किया है.

भ्रष्टाचार के विरुद्ध विद्रोह

● **शैलेंद्रकुमार शर्मा, धनबाद**

पुरस्कार विशेषांक पढ़ना शुरू किया तो पढ़ता ही चला गया जब तक कि समाप्त नहीं हो गया. सभी कहानियां कलापूर्ण हैं एवं विभिन्न सवालों को लेकर सामने आयी हैं. महेश कटारे रचित **'इतिकथा-अथकथा'** कहीं भी हमारे अंतर्मन को छू नहीं सकी और न मनोरंजक ही लगी. रंजन जैदी की **'मकान'** सिर्फ रूढ़िवादी पुराने संस्कारों पर आधारित है. सरोज दुबे की **'दो उंगलियां'** सिर्फ सास का चरित्र-चित्रण लगती है, लेकिन अंतिम पंक्ति 'क्या हुआ' और 'कुछ नहीं' बरबस हमारी आंखों में आंसू खींच लाती हैं. प्रियंवद रचित **'आक्रांत'** मनोरंजक और गुदगुदानेवाली है. चंद्रकांता की कहानी **'ओ सोनकिसरी'** उनकी शैली के दायरे में ही सिमटकर रह गयी है. चंद्रमोहन प्रधान रचित **'शून्य का गणित'** सामाजिक विषमताओं पर करारी चोट करती है. अनाथ बिजली के टूटे हुए स्लेट के टुकड़े और हवा में उड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिनती-पहाड़े की किताब के पन्ने हमें सामाजिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए विचलित कर देती है.

कहानियां और कहानी जगत

● **नरेश भारती, बांदा**

पुरस्कार विशेषांक में निर्णायकों के निर्णय से संतुष्टि? एक सवाल पैदा करती है. **'इतिकथा-अथकथा'** में सभी मानवीय संवेदनाओं एवं आधुनिक षड्यंत्रों को किस्सागोई के सहारे व्यक्त किया गया है. कहानी के बढ़ते आकार को कहानीकार किस्सागोई के आवश्यक पहलुओं में इस कदर समेट लेता है कि पाठक को इसका अहसास तो होता है मगर खटकता नहीं है. कहानी अपने-आप में खरी उतरती है. कहानी की शब्द संपदा किस्सागोई की शब्द संपदा है. मिट्टी की गंध लिये अपने परिवेश को पूरी तरह से चित्रित करने में समर्थ है. सभी मानवीय भावनाओं एवं कुचक्रों को पंचतंत्रीय शिल्प द्वारा व्यक्त किया गया है. दूसरी कहानी **'मकान'** को पढ़कर ऐसा लगा कि **'इतिकथा-अथकथा'** के साथ इसका काफी संघर्ष हुआ होगा क्योंकि यह कहानी किसी मायने में अपने-आप में कम नहीं. यह सड़ी-गली परंपराओं में जीनेवाले एक परिवार की कहानी है जो उजड़ चुका है मगर मुर्दा परंपराओं को ढो रहा है. कहानीकार उसका बखूबी पर्दाफाश करता है. यही दो कहानियां संपूर्ण अंक का प्रतिनिधित्व करती हैं. बाकी सभी कहानियां बहुत ही साधारण हैं. स्थानपूर्ति के लिए रखी गयी प्रतीत होती हैं.

प्रेम जनमेजय द्वारा 1983 के कहानी जगत का आकलन उनकी अनभिज्ञता को सिद्ध करता है. इन तमाम कहानियों के बीच **प्रणय** की कहानी **'गिद्ध'** का जिक्र भी होना चाहिए था, जिसे लगता है जानबूझकर नकारा गया है. इस लेख में किसी-किसी कहानीकार की सभी कहानियों का जिक्र तक कर दिया गया है और किसी की किसी एक भी कहानी का नहीं.

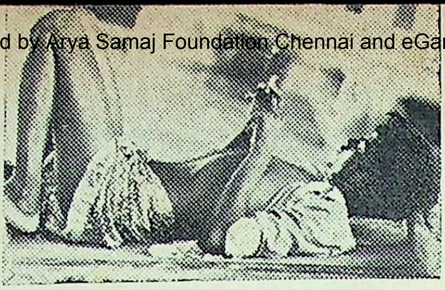

● छाया : फाल एस. गिरोटा

तस्वीर बोलती है

सारिका अंक : 356

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

▣ **प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये**

हर गवाही से मुकर जाता है पेट,
उनकी जूठन तक उतर जाता है पेट.
इस तरह कुछ साजिशें करते हैं, वो
सर से पांवों तक बिखर जाता है पेट.
—परवेज

● मीरा सुमन, द्वारा शैलेंद्र सुमन, एक्सचेंज रोड, रक्सौल-845305

▣ **द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये**

अब कोई ठेस लगेगी तो बिखर जायेंगे,
जिंदगी तुझको यहां तक तो निबाह लाये हैं.
—मेराज फैजाबादी

● चंदन यादव, 27, गणेश चौक, हरदा (म. प्र.)

▣ **तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये**

एक हसरत रही कि घर होता,
कुछ न कुछ मकसदे सफर होता.
लोग समझा के थक गये कब के,
क्यों नहीं मुझपे कुछ असर होता.
—हरि मेहता

● डॉ. प्रमोद चंद्र मिश्र, 17-ख, हीरापुरी, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

▣ **प्रशंसित शीर्षक**

चार दिन फुटपाथ के साये में रहकर देखिए,
डूबना आसान है आंखों के साये में जनाब.
—अदम गोंडवी

● चतुर्भुज नाथ तिवारी, वाराणसी

बड़े मजे से तेरी अंजुमन में लेटा हूं,
खबर नहीं है कि अंजामे कार क्या होगा.
तेरी गली में ही होगा जो हश्र होना है
बुलंद होके हमारा गुबार क्या होगा.

● नसीम अहमद, शाहजहांपुर (उ. प्र.)

जलकर मिले तू खाक में, शिकवा नहीं मुझे
शिकवा है मेरे दिल की तरह, तू धुआं न दे.

● निजाम हुसैन एल्ची, खरगोन

पढ़ते-पढ़ते बीच में उठना...

● **मीना चौधरी, बंबई**

पुरस्कार विशेषांक ने इन पंक्तियों की याद दिला दी—'साहित्य समाज का दर्पण होता है.' हर कहानी समाज से जुड़ी हुई है, समाज के सत्य को नंगी आंखों से देखती हुई, भोगती हुई, उसकी कमजोरियों पर प्रहार करती हुई आगे बढ़ती है. यथार्थ की कठोर ऊबड़-खाबड़ भूमि पर पैदा होती है, उसी से रस खींचकर पल्लवित-पुष्पित होती है, समाज की सही तस्वीर खींचती है. हर कहानी समाज के किसी न किसी विषय पर रोशनी फेंकती हुई, हमें कुछ न कुछ सोचने को बाध्य करती हुई, अपना एक प्रभाव छोड़ जाती है. लगता है जैसे वही कुछ पढ़ा है जो पढ़ना चाहिये था, जिससे चूकने का मतलब एक बहुत ही सुंदर अवसर खोना था. जब कभी पढ़ते-पढ़ते बीच में उठना पड़ता है तो उठने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता था. इतने अच्छे विशेषांक के लिये बधाई भी केवल औपचारिकता है.

एक यादगार तोहफा

● **धर्मपाल सांगवान, भिवानी**

पुरस्कार विशेषांक पढ़कर लगा कि **सारिका** पूरे यौवन के उन्माद में अंगड़ाई ले रही हो और हमारे दिल के जख्मों के टांके चटक रहे हों. यूं तो **'सारिका'** का हर अंक सोच को फैलाव देता है, पर पुरस्कार विशेषांक किसी तोहफे से कम नहीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो अंकों में समाप्य एक लंबी कहानी

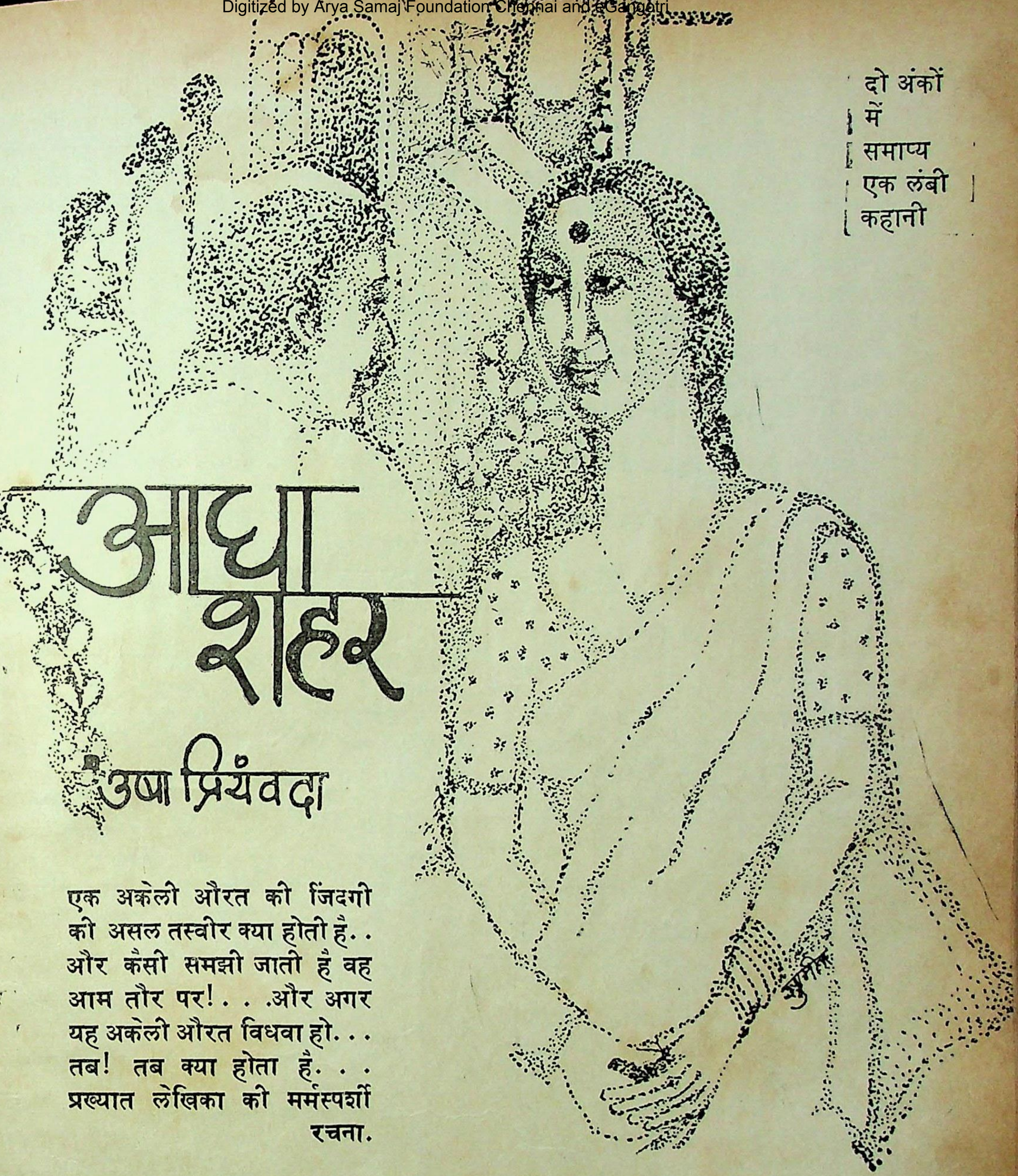

आधा शहर

उषा प्रियंवदा

एक अकेली औरत की जिंदगी की असल तस्वीर क्या होती है. . और कैसी समझी जाती है वह आम तौर पर! . . .और अगर यह अकेली औरत विधवा हो. . . तब! तब क्या होता है. . . प्रख्यात लेखिका की मर्मस्पर्शी रचना.

मुझे देख थोड़ा-सा ताज्जुब हुआ. जाड़े के मौसम में भी पंखे चल रहे थे. एयरपोर्ट छोटा था, साफ-सुथरा, चारों तरफ जाड़े की चटख धूप, मुझे अपनी बांह पर ओवरकोट बहुत भारी लग उठा. उसे ब्रीफकेस पर रखकर मैंने सामने देखा तो पाया कि इस बीच वह जंगले के पास आकर खड़ी हो गयी है. पहली नजर में वह पूरी हिंदुस्तानी हो आयी दिखायी दी; चिपके-चिपके बाल, संकरे माथे पर बड़ी-सी बिंदी, इतनी बड़ी कि वह मेरी आंख में खटक उठी. वह मुझे देखकर मुस्करा दी. मैं उसकी मुस्कराहट के बारे में भूल गया था. वैसे उसका चेहरा हमेशा ही लगता था कि जैसे वह मुस्करा रही हो. पर जब वह सचमुच मुस्कराती थी तो उसके चेहरे पर एक आभा-सी आ जाती थी और बायें गाल पर एक बहुत हल्का-सा गढ़ा बन जाता था. अब, सामान के जहाज से उतरने और आने तक के इन मिनटों में मुझे अपने ऊपर हैरानी होने लगी है कि इला पंडित के गाल का वह हल्का-सा गढ़ा मेरी याद में कैसे टंका रह गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही नहीं, उसे देखते ही कितनी छोटी-बड़ी बातों का रेला मन में आ गया. हमने औपचारिक बातें कीं, पोर्टर ने मेरा सूटकेस उठाया और इला के इशारे पर टैक्सी में रख दिया.

"हम कहां जा रहे हैं?" मैंने पूछा.

"तुम देखोगे?" हम अंगरेजी में ही बात करते हैं और इसका हिंदी में अनुवाद मेरे मन में तुम ही बनता है. वैसे इला ने कभी मुझे तुम नहीं कहा था.

उसके हाथ गोद में रक्खे थे, एक-दूसरे में गुंथे हुए. यह मुद्रा पुरानी थी. अपना बचाव करने को एकदम तैयार-सी. "अच्छी जगह है." मैंने कहा. मध्याह्न की धूप जैसे अंदर आकर मेरे हाथ-पैर सेंकने लगी. बाहर रंग-बिरंगी झाड़ियां थीं. तरह-तरह के फूल. फूलों के नाम मुझे नहीं मालूम.

"कब से यहां हो?" मैंने इला की तरफ मुड़ते हुए पूछा.

"सर्दी शुरू होने से ही."

"काम कैसा चल रहा है?" मैंने बहुत सतर्कता से पूछा.

वह सकुचा आयी, "ठीक-ठीक."

वह साफ बोल रही थी. उसने एक उड़ती नजर डालकर मुझे देखा फिर बाहर देखने लगी.

"कब तक खत्म करने का इरादा है?" मैंने कुरेदकर पूछा.

"मई-जून तक. जुलाई-अगस्त में रैप-अप करने का इरादा है."

"फिर लिखोगी कब?"

वह चुप रही. इंडियन एयर लाइंस की बस को करीब-करीब रगड़ते हुए आगे बढ़ गयी. शायद हम किसी छोटी जगह से गुजर रहे थे, क्योंकि दोनों तरफ दुकानें थीं, उनके बाद कुछ पीले पुते हुए घर, गेस्ट हाउस के दो-तीन साइन बोर्ड. और हम खुली सड़क पर फिर आ गये.

"किसी प्रकाशक से बात की?"

"अभी नहीं." उसकी आवाज बहुत धीमी हो आयी थी. मैं कहना नहीं चाहता था, फिर भी कहा, "तुम्हें तो मालूम ही है कि तुम्हारा सारा भविष्य इस किताब पर टंगा हुआ है."

"हां-हां, मुझे मालूम है." उसने कुछ चिड़चिड़ी अधीरता से कहा.

"मैं तुम्हारे भले के लिए ही. . . " इला ने हाथ बढ़ाकर मेरी मर्दानी हथेली को हलके से छुआ और कहा, "तुमसे विनती करती हूं, प्लीज अभी वह सब नहीं, इस समय नहीं."

टैक्सी जब होटल के पोर्च में रुकी, तब तक हम चुप रहे. इला ने पर्स से चाबी निकाली और सामने खड़े लड़के को पकड़ा दी, "साहब का सामान कमरे में रख दो. . . " फिर मुझसे पूछा, "कुछ हाथ-मुंह धोओगे कि सीधे काफी पीने चलें?"

"तुम यहीं ठहरी हो?" मैंने पूछा. इस डीलक्स होटल में? शायद यह बिना पूछे मेरी आवाज में आ गया था.

"हां. . . और तुम भी." उसने कहा, "मेरे अतिथि की तरह."

"मगर इला.. . . "

"इला विला कुछ नहीं." उसने कहा. ऐसा लगा कि जैसे वेटर उसे पहचानते हैं. हमें तुरंत अच्छी-सी मेज मिल गयी. गरमागरम काफी हमारे सामने आ गयी. सामने स्विमिंग पूल था. उसके आगे दुर्ग की मोटी दीवारें और उनको हल्के-हल्के सहलाता हुआ अरब सागर. धूप की चमक पानी पर अब भी इतनी तेज थी कि आंख नहीं ठहर रही थी, पर इला एकदम चुप हो आयी और टकटकी लगाकर कहीं दूर क्षितिज को ताकने लगी. मैंने सिगरेट सुलगाया और पूछा, "तुम कब बात करना चाहोगी?"

उसने मुझे देखा, "पूछो, मगर एक शर्त पर—कि तुम बात करने के बाद तुरंत बंबई नहीं लौट जाओगे—कुछ दिन रुकोगे."

"कुछ दिन? मेरे पास इतना समय ही कहां है, कलकत्ता, मद्रास, वाल्टेयर, नेपाल सभी जगह जाना है."

"मालूम है, श्रीयुत डीन साहब?"

"मुझे विश्वविद्यालय ने काम से भेजा है. यह मजे के के लिए ट्रिप नहीं है."

"मुझे मालूम है, मगर क्षण को बर्बाद करने की तुम्हारी क्षमता मुझे हर बार चकित करती है. कम से कम यह धूप, यह आसमान, यह समुद्रगंध की साफ हवा, इस पर तो एक पल ठहरो. . ." उसने लंबी सांस ली, "पूछो क्या पूछना है?"

मैंने अपना ब्रीफकेस खोला. जिसे वह समय का सुख कहती है, वह मेरे लिए है बरबादी, ठीक है, समुद्र है, हवा, आसमान, हर जगह है, उसमें डूबकर निष्क्रिय बैठना मेरी समझ में नहीं आता. ब्रीफकेस खोलकर बायोडेटा निकालकर मैंने कलम खोली और पूछा, "तुमने जो तीन लेख छपने भेजे थे, उनमें से कौन-कौन-से छप गये हैं."

"एक भी नहीं. एक वापस आ गया. एक जापान की साहित्य पत्रिका में छप रहा है, एक प्रकाशक ने अभी जवाब भी नहीं दिया." उसके लापरवाह से जवाब से सचमुच मुझे दुख हुआ. कैसी है यह लड़की, क्या इसे अपनी जिम्मेदारी का कोई एहसास नहीं, कितना कुछ घट चुका है और यह है कि वैसी की वैसी.

"तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी नौकरी स्थायी करने के लिए जो कमेटी बनी है, उसका अध्यक्ष मैं हूं."

"तुम हो?" उसने सीधे मेरी ओर देखा. फिर पूछा, "और कौन-कौन है?"

"तुम्हें विभागाध्यक्ष की चिट्ठी मिली होगी."

"मैं वे चिट्ठियां खोलती नहीं."

मैंने इला के चेहरे को ध्यान से देखा. शाम के धुंधलके में बदसूरत चेहरों पर भी लावण्य आ जाता है, पर इला का चेहरा वैसा ही था, खुला, हुआ, आघात योग्य, उसके रंग में काफी कलौंस आ गयी थी और आंखों के नीचे धब्बे दिखाई दिये, जो पहले नहीं थे. हिंदुस्तान आकर उसका हठीला जिस्म हमेशा भर जाता था, पर इस समय वह काफी कमजोर-सी लगी.

"मैं वे चिटठियां खोलती नहीं." उसने दोहराया.

"कमेटी में तीन लोग हैं, आर्थर, तुम्हारा विभागाध्यक्ष,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रुत गति से

मंत्री महोदय को राजधानी से क्षेत्र में उद्घाटन एवं भाषण हेतु जाना था. कार से चार घंटे का और वायुयान से आध घंटे का रास्ता था. मंत्रीजी चलने को तैयार हुए तो मालूम हुआ कि वायुयान की व्यवस्था नहीं हुई है, कार से जाना होगा. मंत्रीजी अकड़ गये, इज्जत की बात थी. व्यस्त भी थे, वक्त बरबाद नहीं कर सकते थे. वायुयान के लिए आदेश हुआ, सचिव से चपरासी तक सब दौड़े. वायुयान उपलब्ध नहीं था. बड़ी कोशिशों के बाद, आठ घंटे के बाद वायुयान की व्यवस्था हो सकी. मंत्रीजी प्रसन्न मुद्रा में आकाश मार्ग से द्रुत गति से केवल आध घंटे में निर्धारित स्थान पर पहुंच गये—केवल साढ़े आठ घंटे लेट. □

▣ डॉ. प्रमोदकुमार सिंह

● राज भवन औषधालय, राजभवन, पटना-800022

और विमेंस स्टडी से अन्ना फ्रैंक. हम सबने तुम्हारा बायोडेटा बारीकी से देखा है और इसी निश्चय पर पहुंचे कि तुम्हारा प्रकाशकीय पक्ष कमजोर है. तीन लेख छप जाते और यह पुस्तक कोई प्रकाशक ले लेता तो तुम्हारा केस काफी मजबूत हो जाता."

"छपाओ या मरो." उसने अमरीकी विश्वविद्यालय में प्रचलित नारा धीरे से दोहराया. फिर उसने कहा, "देखो राघव, इतना लंबा चेहरा न बनाओ. सब ठीक हो जायेगा."

दिलासा देने मैं आया था, दिलासा की जरूरत इला को थी, जिसका पूरा भविष्य एक बहुत नाजुक से धागे से टंगा हुआ है. और वह है कि माथे पर बड़ी-सी बिंदी लगाये बैठी है और धीरे-धीरे काफी पी रही है. मुझे लगा, यह ठीक नहीं है; उसे यह अमूल्य समय इस तरह नहीं गंवाना चाहिए—उसे पुस्तकालय में होना चाहिए. टाइपराइटर खटखटाना चाहिए, गंभीर पुस्तकें छापनेवाले प्रकाशकों और यूनिवर्सिटी प्रेसों को चिट्ठियां लिखनी चाहिए.

"तुम्हें रूल तो मालूम ही हैं, तुमसे जबानी तो बता ही दिया गया है कि नौकरी के पांचवे साल के अंत तक तुम्हारे विभाग को तुम्हें यह जता देना है कि तुम्हें स्थायी कर प्रोमोशन मिलेगा या फिर नौकरी खत्म होने का नोटिस. . . "

इला ने बच्चों की तरह हथेली से मुंह पोंछा, फिर पूछा, "और कुछ?"

"इला. . . इला. . . "मैंने कहा, "तुम जिम्मेदारी क्यों नहीं समझतीं? तुमने कहा कि टीचिंग भार इतना है कि पढ़ने-लिखने का समय नहीं मिलता तो तुम्हारे विभाग ने छुट्टी ही नहीं दी, रिसर्च करने और यहां आने का पैसा भी दिया. लोगों को तुमसे उम्मीदें हैं, जो तुम्हारे समर्थक हैं, उनका तो ख्याल करो."

"यानी तुम. तुम्हारी मैं बेतरह आभारी हूं." पर चलते समय आर्थर ने बड़े ही पितृभाव से कहा था, 'इला, हिंदुस्तान में किसी अच्छे आदमी से शादी करके बस जाओ.' मैंने कहा, 'यहां क्यों नहीं,' तो उसने कहा; 'मुझे लगता है; तुम वहीं सुखी रहोगी.'

"फिर?" मैंने पूछा.

"कहां मिलते हैं अच्छे आदमी" वह हल्के से हंस दी, "वे सारे तो बीवियों से बंधे बैठे हैं."

मैंने उसके अभिप्राय को टालते हुए बात को फिर पकड़ते हुए कहा, "तुम्हें मालूम है तुम्हारी नौकरी पर कितने लोगों की नजर है? तुम्हें मालूम है कि कितने लोग अंगरेजी में पी-एच. डी. करके बेकार बैठे हैं?"

इला ने मुझे ऐसी दृष्टि से देखा, जिसमें खेद भी था, खीझ भी. निश्चय ही वह यह बात बार-बार सुन चुकी थी.

फिर उसने उठते हुए कहा, "रेत पर चलें?"

मेरी नजर अपने जूतों और मोटे मोजों पर गयी. फिर मैं जूते उतारने लगा, जूते और मोजे लकड़ी की पुलिया के पास छोड़कर मैं उसके साथ रेत पर आ गया. कोई जूते उठा न ले जाये, मन ही मन आशंकित होता हुआ. दो बच्चे गीली रेत में खेल रहे थे और उनसे कुछ दूर हटकर बैठी हुई एक विदेशी स्त्री बोतल से खालिस जिन पी रही थी. समुद्र की ओर से गीली-गीली गंध लिये हवा आ रही थी.

"सूरज को देखो." इला ने बहुत धीमे से कहा. अब तक जिस खीझ को मैं दबा रहा था, ऊपर-ऊपर आने को हुई. सूर्यास्त, सूर्योदय, पूरा चांद, फूल-पत्ते, इन सब में मुझे कभी दिलचस्पी नहीं रही है. न जाने क्यों लोग इन सब रोजाना की चीजों को लेकर उत्तेजित हो जाते हैं, पर मैं आज्ञाकारी भाव से सूरज को देखने लगा, जो कि तेजी से पानी में धंस रहा था. मेरे लिए वह एक सूर्यास्त मात्र था, सूरज के पानी में डूब जाने के कुछ क्षण. मैंने देखा, आसपास के सारे लोग उधर ही देख रहे हैं, बच्चों ने खेलना छोड़ दिया है, विदेशी स्त्री अभी भी अपने में लीन जिन के घूंट ले रही है.

"जब सूरज डूबे तो कोई चीज मांग लेना." इला ने कहा.

"तुमसे?"

"नहीं, विधाता से."

सूरज एकदम पानी में डूब गया, पर उस जगह अभी भी लाली थी. एक खूबसूरत, मनमोहक लाली, मुझे मानना पड़ा.

"तुमने कोई विश की?" इला ने पूछा.

"हां, बताऊं?"

"अभी नहीं. तुरंत बताने से पूरी नहीं होगी."

वह एक जादू का-सा क्षण था. इला एकदम छोटी बच्ची-सी लगने लगी. भोली, विश्वसनीय, आंखों से झरती आभा और हंसी भरा चेहरा. शाम की गुलाबी रोशनी उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों तरफ झिलमिला रही थी और उसमें माथे की बिंदी उतनी चटक नहीं लग रही थी. तेज हवा से उसका पल्ला फड़फड़ा उठा तो मैंने देखा कि उसकी साड़ी नीली थी, ठीक सूर्यास्त के आसमान की तरह. नहीं, वह मुस्करा नहीं रही थी, सिर्फ लग रहा था कि जैसे मुस्करा रही हो. बल्कि मुझे लगा कि जैसे उसकी आंखें गीली-गीली हैं. मेरे मन में उसके लिए एकदम बड़ा ममत्व उमड़ा और मेरे अंदर चाहना हुई कि मैं उसे सीने से लगा लूं. किसी को रोता मैं नहीं देख सकता. खासतौर से इला को, जो कि हर मोड़ पर दुर्भाग्य को आमंत्रित करती दिखाई देती है. "मैं रोज इस वक्त यहां आती हूं." उसने कहा. मुझे खुशी हुई कि मेरी क्षणिक दुर्बलता भंग हो गयी. इस छोटी-सी भावुकता का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है, यह मुझे अच्छी तरह मालूम था. आजकल के वातावरण में तो किसी स्त्री को डूबते से बचाना भी खतरे से खाली न था. न जाने कब हल्ला मचा दे.

"यहां?"

"हां, पास के गांव में तो रहती हूं." हमारे पीछे वह पांच सितारा होटल बिखरा हुआ था, उसके कमरे और काटेज तारों की तरह झिलमिलाने लगे.

"मैं कहीं न कहीं जरूर जाती हूं. सूर्यास्त देखने, गोआ में तो समुद्र तटों की कमी नहीं. आओ वहां मोड़ तक चलें."

हम मोड़ तक गये, एकदम चुपचाप. क्या वह भी वही सोच रही होगी जो कि मैं? तीन दिन बाद प्रशांत महासागर की लहरों ने अभय का शव लाकर किनारे रेत पर पटक दिया था. सुबह तक उसका आधा चेहरा चील, कौवे नोचकर खा गये थे. इला ने मुझे ही फोन किया था, मैं ही पहुंचा था. दाह-संस्कार का प्रबंध किया था, हवाई जहाज पर सीट बुक करायी थी. पास से पैसा देकर उसे विदा किया. वह हाथ में अभय की अस्थियां लेकर जहाज पर सवार हुई थी. जाने से पहले वह फूट-फूटकर, चीख-चीखकर रोयी मुझसे लिपटकर. मैंने उसके बाल थपथपाये, अंजू-संजू के पिता वाली मुद्रा में. उसका रोना सुनकर मुझे लग रहा था जैसे कि कोई मेरे शरीर से मेरी खाल खरोंचकर उतार रहा है. उस समय मुझे लगा कि यह दुख सच्चा है, ये आंसू सच्चे हैं. इला ने सचमुच अभय को प्यार किया है और वह बेवकूफ सिरफिरा अभय अपने पागलपन में ही समुद्र में डूब मरा है.

उसके बाद मैं यह नहीं कहूंगा कि अंगरेजी विभाग में उसे नौकरी मेरी ही वजह से मिली. वह योग्य थी और विभाग को एक लेक्चरर की जरूरत थी.

"चलो, वापस चलें." वह इतनी देर चुप खड़ी-खड़ी समुद्र को देख रही थी, "अंधेरा हो जाता है तो मुझे समुद्र से डर लगने लगता है."

हम वापस लौट पड़े. पुलिया के पास मैंने जूते-मोजे उठाये. इला जैसे कहीं दूर चली गयी थी, क्या वह अब भी अभय से जुड़ी है? क्या उसमें कुछ संस्कार बचे हैं हिंदुस्तानी औरत के? लीक पकड़कर तो वह कभी नहीं चली. स्वीमिंग पूल के पास बिजली की मशालें जलने लगी थीं और लंबे-चौड़े डिनर के लिए बर्तन, डोंगों का आयोजन दीख रहा था, शायद नृत्य का भी प्रबंध होगा, क्योंकि बाजे वाले अपना सामान निकाल रहे थे. उनके पीछे चार-पांच दिन पहले नये साल के आयोजन में लगायी आदमकद नकली मोमबत्तियां जो अभी हटायी नहीं गयी थीं, जल चुकी थीं.

शुभा को यह सब अच्छा लगेगा—मुझे अनायास ही बीवी की याद आ गयी. शुभा को नयी जगहें, नये-नये होटल, नये रेस्तरां में खाना बहुत अच्छा लगता है. अगली बार उसे भी लाऊंगा, वैसे तो वह हर बार आती थी, पर इस बार संजना को उसकी जरूरत थी. अगर अस्पताल जाना पड़ गया तो संभालने को कोई तो चाहिए. "कमरा किधर है?" मैंने पूछा.

"कमरे तो सभी खचाखच बुक हैं, एक कॉटेज ली है." इला ने हिंदी में कहा, "आपको अच्छी लगेगी. थोड़ी ऊंचाई पर है. और वहां से दृश्य बहुत अच्छा दीखता है."

"यह सब करने की क्या जरूरत थी!" मैंने शिष्टाचारवश कहा, "एयरपोर्ट के पास ही मीटिंग कर लेते और कल सुबह की उड़ान से मैं वापस चला जाता."

"आपको जनवरी में गोआ की भीड़ के बारे में नहीं मालूम. यहां से निकलना इतना आसान नहीं." इला ने दरवाजा खोला.

सुंदर कॉटेज की बैठक. छोटी-सी रसोई. दो कमरे.

"तुम कहां ठहरी हो?" मैंने पूछा.

"यहीं. उस छोटे कमरे में." वह सहज थी.

"क्यों? तुम मुझसे डर रहे हो?"

वह बीचों-बीच खड़ी रह गयी.

मेरे मन में बहुत-सी बातें एक साथ उठीं, उससे क्या कहूं, क्या नहीं, सोचता हुआ मैं एक कुर्सी पर बैठ गया.

"मैं सच कहती हूं कि मुझे मालूम नहीं था कि तुम मेरी कमेटी के अध्यक्ष हो. मुझे जब तुम्हारा खत मिला कि तुम मुझसे कुछ बात करना चाहते हो तो मुझसे जो कुछ आतिथ्य बन सका, किया. तुम बरसों से एहसान करते आ रहे हो. मैं तो बदले में कुछ नहीं दे सकी. सोचा कि तुम उस ठंडी, बरफ, भीड़, दूषित वायु में से आ रहे हो, गोआ में कुछ समय अच्छा लगेगा. तुम्हारे शाही स्टाइल से परिचित हूं. इसीलिए यहां प्रबंध किया. इसे रिश्वत के रूप में न लो."

". . . सो नाइस आफ यू." मैंने कहा, "मेरे बारे में यह सभी को मालूम है."

"कि तुम हर प्रकार की रिश्वत से ऊपर हो, कि तुम शुद्ध और प्रबुद्ध हो, कि छब्बीस साल में शुभा के अतिरिक्त तुमने किसी को आंख उठाकर भी नहीं देखा है. फिर दूसरे कमरे में मेरे रहने से फर्क ही क्या पड़ता है?"

"वह सब ठीक है, मगर एक सामाजिक मर्यादा भी होती है. एक ही कॉटेज में साथ रहना ठीक नहीं होगा. तुम खाने के बाद गांव क्यों नहीं चली जातीं?"

वह एकटक मुझे देखने लगी.

"ठीक है." उसने अचानक हिंदी में कहा, "आप आराम कर लीलिए, मैं अपना दूसरा प्रबंध कर लूंगी."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं खाना अगर बाहर न खाऊं तो तुम्हें आपत्ति होगी? मैं थका बहुत हूं, सिर्फ एक सैंडविच और सूप से काम चल जायेगा."

उसने कहा, "मगर आज बाहर बहुत अच्छा बफे है. गोआनीज खाना, असली."

"भूख नहीं है."

"अच्छा." कहकर वह दूसरे कमरे में चली गयी और उधर से बहुत देर तक कोई आवाज नहीं आयी.

मैंने जब इला को पत्र भेजा था तो दूसरे ही सीनेरियो की कल्पना की थी. चाय-काफी के बाद ब्रीफकेस खोलूंगा और उसके बायोडेटा को गहरायी से जांचूंगा. उसकी बात सुनूंगा. आखिरकार आर्थर और फ्रैंक ने सारी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दी है. दोनों घुटे हुए और घाघ हैं. उस कमेटी में मुझे रक्खा ही इसलिए गया है कि मैं दक्षिणेशियाई हूं. हम सभी इला के साथ पूरा न्याय करना चाहते हैं, उसके पूरे भविष्य का प्रश्न है, विभाग की छवि का प्रश्न है. वैसे भी अंगरेजी विभाग में पुरुष और स्त्रियों का अनुपात असंतुलित है. सरकार की ओर से कई अध्यादेश आ चुके हैं कि स्त्रियों और अल्पसंख्यकों को बढ़ावा दिया जाये. इला के स्थायी हो जाने में सभी का भला है. (स्त्री भी और एशियायी अल्पसंख्यक भी) अगर जरा भी गड़बड़ी हो गयी तो विश्वविद्यालय का फेमिनिस्ट ग्रुप 'अन्याय, अन्याय' चिल्लाता हुआ मुकदमा ठोक देगा. और इला है कि अपने उसी गैर जिम्मेदाराना तौर-तरीके से, उसी अल्हड़पने से अपना दायित्व नकार रही है. अभी मुझे हैदराबाद जाकर कादंबरी का भी इंटरव्यू करना है. कादंबरी अपनी पी-एच.डी. थीसिस खत्म कर चुकी है और पति-पत्नी दोनों ही पश्चिम वापस लौटने को अधीर हैं. कादंबरी के भारी-भरकम शरीर और ठेठ गंवारू चाल-ढाल को याद कर मेरा दिल बैठने लगा. इला यूनिवर्सिटी में नहीं रहेगी. शहर में नहीं रहेगी तो कैसा लगेगा?

मैं इंतजार में था, इला बाहर आये तो अंदर से दरवाजा बंद कर मैं कपड़े बदलूं. पाजामा-कुर्ता पहनकर चैन से बैठूं. इस बीच मैं खिड़की से बाहर देखने लगा. रात का रंग ऐसा होता है, समुद्र के पानी में धुला-मिला, नीचे से पाश्चात्य संगीत के स्वर ऊपर आते हैं, धीमी-धीमी गति की धुन, शायद कुछ लोग उठकर नाचने लगे होंगे.

इला बाहर आयी. उस समय वह बहुत साधारण, बहुत मामूली-सी दीख रही थी. सत्ताइस-अठ्ठाइस साल की एक पढ़ी-लिखी लगनेवाली स्त्री मात्र, "तो मैं जा रही हूं. हालांकि आपको या आपकी रेपुटेशन को मुझसे कोई खतरा नहीं था, मगर हमेशा की तरह आप ठीक और सूझ-बूझ की बातें कहते हैं. आपको अपनी छवि का ख्याल रखना है. शार्क मछली की तरह आदमखोर इला के साथ एक ही कॉटेज में आप कैसे रह सकते हैं?"

मैं चुप हूं. इस बात का उत्तर ही क्या है?

"तुम यह सब न करतीं तो अच्छा रहता." मैं सोचकर उत्तर देता हूं, "बाहर से देखनेवालों को तो यह रिश्वत जैसा ही लगेगा न? मैंने जब अध्यक्ष पद स्वीकार किया था, उसके पीछे सिर्फ तुम्हारी मदद करने का भाव था. औरों को भी लगा कि जफर को फिर या गिरिराज को कमेटी में रखना शायद उचित न हो."

"क्यों?" इला ने काटते स्वर में पूछा, "उनके रहने से मुझे ज्यादा मदद मिलती, नहीं? आखिरकार उनके अनुसार वह दोनों ही मेरे प्रेमी रह चुके हैं न?"

कमरे में चुप्पी रही. जफर और गिरिराज दोनों ही इला के विभागीय सहयोगी हैं.

"सच्चाई तो यह है कि जो लोग घूम-घूमकर मेरे खिलाफ प्रचार करते हैं, उन्हें मैंने कभी अपने पास फटकने भी नहीं दिया. यह उनका आहत पुरुषत्व ही है, जो फेंटेसी गढ़कर. . ."

"वह सब यूनिवर्सिटी के जाने-माने लोग हैं." मैंने बात काटकर कहा.

"यूनिवर्सिटी का माना-जाना होना कोई शराफत का पूरा सबूत तो नहीं? जो आदमी अच्छा अध्यापक या स्कॉलर हो, वह लुच्चा या शोहदा नहीं हो सकता यह कहां लिखा है?" वह थोड़ी-थोड़ी उत्तेजित हो चली थी, "फिर मैं यूनिवर्सिटी में नहीं पढ़ाती? फिर मैं ही चरित्रहीन क्यों कहलायी जाती हूं?"

"तुम्हारी बात दूसरी है." मेरे मन में वर्षों का संचित क्रोध अनायास मेरी जुबान पर आ बैठा.

"क्यों दूसरी है? क्योंकि मैं औरत हू, इसलिए? मैं अकेली हूं, इसलिए?"

"यह सवाल स्त्री-पुरुष का नहीं है, अपनी-अपनी छवि का है." मैंने कहा.

निम्नस्तर

■ श्यामसुंदर अग्रवाल

"पुलिस ने मजदूर यूनियन के नेता को नंगा कर शहर के घंटाघर के चारों ओर डंडे से गधे की तरह हांका!" जनता के एक शिष्टमंडल ने जिलाधीश से शिकायत की.

जिलाधीश किसी अन्य राज्य से था. उसने शिष्टमंडल को गहरे अफसोस के साथ कहा, "क्या बताऊं, मुझ तो खुद शर्म आ रही है. ये आपके राज्य की पुलिस ही है, जो निम्नस्तर के ढंग अपना रही है. हमारे राज्य में तो पुलिस ऐसे लोगों को गोली से ही उड़ा देती है और किसी को खबर तक नहीं होने देती." □

● निर्माण मंडल, लो. नि. वि. (भवन शाखा) मुक्तसर 152026

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ओ. ... आई सी. सत्रह साल की उम्र में मैं घर से भाग गयी थी,इसलिए न? मेरे पति ने समुद्र में डूबकर आत्म-हत्या कर ली, इसीलिए न?"

"इला. . . तुम बेकार में बहस कर रही हो. जो तुम हो, वह तुम भी जानती हो और मैं भी. . ."

"आप जानते हैं? त्रिकालदर्शी हैं न? अंतर्यामी हैं? कहां क्या घट रहा है, सब आपको पता रहता है?"

"इला. . . तुम बेकार में उत्तेजित हो रही हो. इन सब बातों से फायदा ही क्या? तुम अगर आधे शहर को प्रेमी बनाकर रखना चाहती हो तो यह तुम्हारा विकल्प है. . ."

"ओ माई गॉड." उसने कहा, "तुम कुछ सुन रहे हो कि तुम्हारी आवाज में कितनी हिकारत है? एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता? एक स्त्री अगर अकेली, सम्मान से जीना चाहती है तो उसके चारों तरफ गिद्ध नोच खाने को तैयार रहते हैं." इला की आवाज तेज हो गयी थी, करीब-करीब चीखने के स्तर तक. आसपास लोग डिस्टर्ब हो रहे होंगे, मुझे डर लगा. मैंने नरम पड़ते हुए उसकी बांह पकड़कर बैठाते हुए कहा, "इला, शांत होओ...आसपास लोग क्या सोचेंगे?"

इला ने झटके से बांह छुड़ा ली और कमरे में बेहद उत्तेजित होकर चक्कर लगाने लगी, "और होता क्या है चरित्रहीन होना? चरित्र है क्या? क्या है उसकी परिभाषा? उसका सामाजिक संदर्भ दिया किसने है, तुम्हीं पुरुषों ने न? ठीक है—मान भी लो अगर समय के बाद मेरे प्रेमी रहे भी तो क्या? मुझमें कोई गंदगी लगी रह गयी? मैं जानती हूं मैं क्या हूं, आई एम अ गुड ह्यूमन बीइंग—मुझमें उदारता है, करुणा है, सच्चाई है..."

"सच्चाई?" मैंने बेहद व्यंग्य से कहा.

"हां सच्चाई." वह एकदम शांत हो गयी. उसने धीमे मगर दृढ़ स्वर में कहा, "अगर तुम जफर और गिरिराज की बातों को सच समझते हो और मुझे झूठा. . .तो यह तुम्हारा विकल्प है, तुम्हारा दुर्भाग्य..." उसके चेहरे पर उत्तेजना की वजह से जो रंग दौड़ गया था, एकदम रिस गया. उसकी आंखें अब जैसे दृष्टिहीन थीं, वह एकदम बौनी हो आयी थी. सिमटी-सिकुड़ी.

"इतनी हिंसा. . .इतना प्रतिकार. . .मुझे मिटा देने की इतनी तिलमिलाहट, कितने दयनीय हैं वे तुम्हारे मित्र... यूनिवर्सिटी के वे जाने-माने लोग."

"इला, प्लीज अब तुम जाओ." मेरा हाथ अपने आप दरवाजे की ओर उठ जाता है. "मैं बेहतर थक रहा हूं, आराम करना चाहता हूं." इला आंधी की तरह बाहर निकल गयी. उसके पीछे दरवाजा भड़ से बंद होता है.

नाटक, घोर नाटक.

नहाते और कपड़े बदलकर अपने सूप और सैंडविच का इंतजार करते हुए मुझे बराबर लगता रहता है कि मैं सचमुच भोला और बेवकूफ हूं. सोचा था कि इला छुट्टी लेकर गंभीरता से रिसर्च में जुटी होगी. अंगरेजी में लिखी जानेवाली आधुनिक कविता पर उसकी किताब करीब-करीब आधी तो हो ही गयी होगी. वह वहां गोआ में बैठी मौज उड़ा रही है, मंहगे होटल में खा-पी रही है. और मुझे यहां ठहराना और यह मासूम, निश्छल भाव शायद मुझे प्रभावित करने के सस्ते तरीके हैं. एक बार उसके साथ नाम जुड़ गया तो? वह तरह-तरह से मुझे ब्लैकमेल कर सकती है. मुझे शुभा की याद आती है, अपनी पचास साला उम्र के साथियों की, अंजना, संजना, घरजंवाई दामादों, नातियों की—यूनिवर्सिटी में मेरी कितनी इज्जत है. इंटरनेशनल स्टडीज का अध्यक्ष और डीन हूं. प्रेसीडेंट के ऑफिस में मेरी राय पूछी जाती है, वॉइस प्रेसीडेंट बनने के चांस हैं, वह सब एक भावुकता में बहा दूं. अभय की विधवा इला की मदद करने के लिए. दरवाजे पर हलकी दस्तक होती है, बैरा है— वह मेरे सामने ट्रे सजा देता है. खा-पीकर मैं सिगरेट सुलगाता हूं तो एकबारगी हर चीज सही परिप्रेक्ष्य में दिखाई देने लगती है. मैं बेकार ही परेशान हो रहा हूं, अगर इला कुछ उचित, अनुचित का दावा भी करेगी तो क्या लोग उसे मान लेंगे? कहां वह और कहां मेरा बेदाग नाम, मेरे ऊपर कोई उंगली उठा ही कैसे सकता है? फिर भी जफर की बातें एक बार फिर मन में कुलबुला उठीं, "अरे राघव साहब, क्या बॉडी है उसकी. साफ शफ्फाक झकाझक, एकदम संगमरमर, कहीं एक भी दाग या धब्बा नहीं, एक तिल तक नहीं." मुझे ऐसी बातें सुनना अच्छा नहीं लगा, "तुम बहुत पी

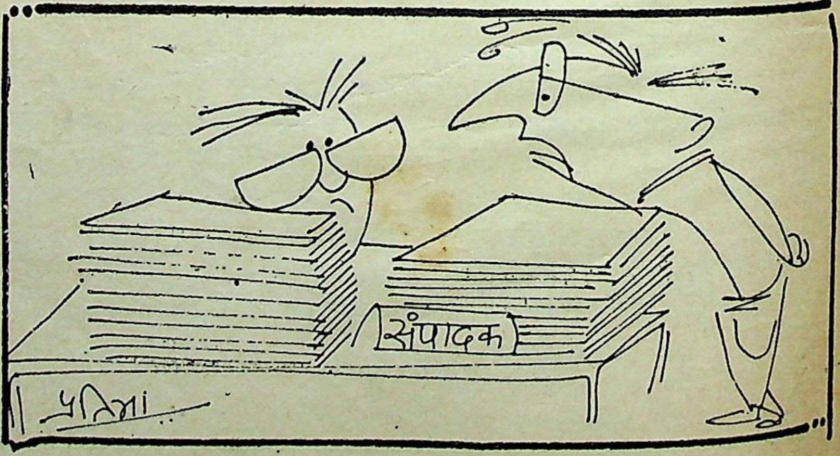

आपका आगामी अंकों वाला घोषणा-पत्र पढ़ा था . . . सभी संभाव्य विशेषांकों के लिए दो-दो रचनाएं ले आया हूं . . .

व्यंग्यचित्र : प्रतिभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हो जफर. किसी शरीफ स्त्री के बारे में यह सब कहना ठीक नहीं."

"आप पर भी कहीं उसका जादू तो नहीं चल गया. बहुत खतरनाक औरत है, मार कर तड़पने भी नहीं देती. छुरी है छुरी. . .चलूं. . .वह मेरे इंतजार में होगी." पार्टी की समाप्ति पर शुभा सब बर्तन धो-पोंछकर ऊपर जाने लगती है. रसोई की बत्ती बंद करते हुए मैं कहता हूं, "शुभा, जरा सिगरेट लाने जा रहा हूं. . . पर मैं सिगरेट लाने की बजाय इला के फ्लैट की ओर गाड़ी मोड़ देता हूं. चौमंजिली इमारत एकदम अंधेरी है, इला का फ्लैट भी. मुझे यह सब करने का क्या अधिकार है? मैं अचानक ग्लानि से भर उठता हूं, इला युवती है, आकर्षक और विधवा. . .उसे अपनी जिंदगी अपनी तरह जीने का अधिकार है. जिससे चाहे, जितनों से चाहे प्रम करे. मैं वापस आ जाता हूं. एसी बातें सिर्फ जफर ही नहीं करता और लोग भी करते हैं. इला की विद्यार्थिनें, इला का दूसरा सहयोगी गिरिराज . . . धीरे-धीरे पार्टियों में से उसका नाम कटने लगता है, और उसको लेकर इतनी चर्चा होने लगती है कि शुभा, अंजना, संजना को सख्त ताकीद देती है कि वे इला से कोई संपर्क न रखें.

इला जब भी सामने पड़ती है, मुझे उसका चेहरा देखकर विश्वास नहीं होता कि वह सब सच होगा. मगर लोग झूठ भी क्यों कहेंगे. वह केवल इला को लेकर ही क्यों कहते हैं, और भी कितनी औरतें हैं, किसी और को लेकर क्यों नहीं? पहले अंजना की शादी होती है फिर संजना की, मैं उसे बुलाना चाहता हूं, पर शुभा कहती है कि अगर इला आयेगी तो उसकी काफी सहेलियां शादी का बहिष्कार कर देंगी, क्योंकि वे सब शरीफ हैं. इला जैसी लड़की के साथ कोई नहीं उठना-बैठना चाहेगा, पर इला को निमंत्रण जरूर जायेगा. मैं अड़ जाता हूं, "लोग तुम्हें भी उसकी सूची में जोड़ लेंगे." शुभा कहती है, "तुम क्यों जिद पकड़ रहे हो?"

"क्योंकि इला अभय की विडो है, और अभय तुम्हें दीदी कहता था. . .भूल गयीं क्या?"

"नहीं. . .भूली नहीं हूं, पर दुनियादारी तो निभानी ही है."

अंजना की शादी, मंडप, शामियाना, रिसेप्शन, इला नहीं बुलायी गयी. एक दिन यूनिवर्सिटी के किसी रिसेप्शन पर मुलाकात होती है, वह हम दोनों को देखकर अनदेखा कर देती है. मुझे अंदर कहीं कचोट उठती है, हमने जफर को बुलाया था, गिरिराज को, सपरिवार—मगर इला को नहीं. क्यों वही सम्माननीय बने रहे हैं, देखा जाये तो इला अकेली है, अपने आचरण के लिए खुद जिम्मेदार, पर ये लोग तो बीवी-बच्चों वाले हैं.

इला खड़ी-खड़ी औरतों से बात करती है, हमारे पास तक नहीं आयी. लौटते समय शुभा कहती है, "देखा तुमने, तुम्हें हलो तक नहीं किया उसने. तुमने क्या नहीं किया इस औरत के लिए, अभय मरा तो दौड़े गये, आर्थर से कहकर नौकरी दिलवायी—अब उसे तुम्हारी क्या जरूरत?" जरूरत

तो पड़ेगी, मैं मन ही मन सोचता हूं. तीन साल पढ़ा लेने के बाद स्थायी होने का प्रश्न उठेगा, उस कमेटी के लिए आर्थर मुझे जरूर कहेगा—तब तो जरूरत पड़ेगी. तीन साल बाद जो कमेटी बनी, उसमें मैं नहीं था, जफर था. और जफर ने इला की इतनी कड़ी आलोचना की कि कमेटी ने उसे केवल एक साल की अवधि दी. साल भर बाद फिर रिव्यू होगा, और तब फिर निर्णय होगा, और उस दूसरी साल भी उसे स्थायी नहीं किया गया, एक साल की अवधि और दी गयी और अब, न जाने क्या सोचकर आर्थर ने जफर को कमेटी से हटाकर मुझे अध्यक्ष बना दिया था. और मैं तहेदिल से इला की मदद करना चाह रहा था, पर ऐसे नहीं. अपने नाम और इज्जत को मिटाकर नहीं. मैं जाकर इला से मिलूंगा, यह सुनकर गिरिराज मेरे कमरे में आये थे. कुर्सी उनके बैठने से जरा-सी चरमरायी थी, "अच्छी तफरीह रहेगी." उन्होंने कहा. पान तो यहां मिलते नहीं थे, हर समय पान मसाला और जाफरानी पत्ती चबाते रहते थे, "अच्छी तफरीह रहेगी. अब तक कोई उल्लू फांस लिया होगा. मजे उड़ा रही होगी. अब उसकी छुट्टी कीजिए और कादंबरी को नियुक्त करवा दीजिए."

कादंबरी के पति सदानंद से गिरिराज के पुराने संबंध थे, उनके चमचों में वह प्रमुख थे. गिरिराज का वरद हस्त उन पर हमेशा रहता था.

"कादंबरी को क्या आता-जाता है?" मैंने कहा. फोन आ जाने पर मुझे गिरिराज से छुट्टी मिली. कभी-कभी मुझे लगता था कि मैं ही हूं एक ऐसा, जिस पर इला की कृपा दृष्टि नहीं पड़ी. उसने कभी अकेले में खाने पर नहीं बुलाया, कभी गोदी में सिर छुपाकर रोयी नहीं, कभी भरी रात में फोन करके नहीं कहा, तुरंत आओ, नहीं तो मैं फांसी लगा लूंगी. अगर वह करती भी, तो मैं यही करता, जो मैंने अब किया है. उसे बाहर कर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया है. वह जहां भी जाये, कम से कम मेरे साथ एक कॉटेज में नहीं रह सकती. मुझे अपना बचाव करना ही है.

——————अगले अंक में——————

क्या हुआ इला की जिंदगी के अगले पड़ाव पर. . .और क्या वह अपनी जिंदगी अपने ही तरीके से जी सकी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीढ़ियां

आमने-सामने

आज से दस-पंद्रह साल पहले पत्र-पत्रिकाओं के जरिये एक जीवंत चर्चा थी, एक माहौल था. . .कहानी का . . . 'कहानी', 'नई कहानियां', 'ज्ञनोदय', 'माध्यम'. . .वगैरह के जरिये हर प्रकार का साहित्य प्रकाशित हुआ था. . . चाहे वह किसी भी विचारधारा या खेमे का क्यों न हो. . . पर आज ऐसा नहीं होता!. . .रचनाधर्मिता पर यह संकट आखिर आया कहां से? अच्छी रचनाएं जब लगातार अनुपस्थित रहने लगें तो आखिर इसे क्या कहा जायेगा! क्या यह मान लिया जाये कि रचनाकार आज अभिव्यक्ति को लड़ाई के तौर पर नहीं ले रहा है या फिर यह कि शोर-शराबे में अच्छा साहित्य दब जाता है?—'कहानी' के बहाने तमाम सवालों पर एक बेवाक चर्चा . . .

...और उसके बाद चिरागों में रोशनी न रही

बटरोही : अमरकांतजी, इस समय हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में जो माहौल है, खासकर कहानी पत्रकारिता में, ऐसा लग रहा है कि चारों ओर एक सन्नाटा-सा व्याप्त है. वो ताजगी, वो बहस, वो चर्चा इस समय नहीं दिखायी दे रही है जैसी 10-15 साल पहले दिखायी देती थी. इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं? क्यों आज वो जीवंतता, चाहे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हो चाहे कहानी प्रतियोगिताओं के माध्यम से या अन्य माध्यमों से, जो आज से 10-15 साल पहले दिखायी देती थी. . .उदासीनता में बदल गयी?

अमरकांत : मेरे ख्याल से ये कहना ठीक नहीं है कि वैसा उत्साह नहीं है. आजकल कहानी की जो पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं उनमें बहुत-सा अच्छा साहित्य भी छपता है, लेकिन उनके प्रचार-प्रसार की कोई व्यवस्था नहीं है. कोई सही व्यवस्था नहीं है इसलिए कुछ साहित्यकार पढ़ते हैं और कुछ नहीं भी पढ़ते हैं. ये बात अवश्य है कि उस जमाने में 'कहानी' एक पत्रिका थी, प्रगतिशील आंदोलन बहुत तेज था, उसमें प्रगतिशील साहित्यकार कहानियां लिख रहे थे, बहुत तेजी से लिख रहे थे. उस केंद्रीय पत्रिका में वो कहानियां छपती थीं और सब का ध्यान आकर्षित करती थीं अब व्यावसायिकता दूर-दूर तक है. व्यवसायिक पत्रिकाएं प्रचारित और प्रसारित हैं. उनके शोर-शराबे में बहुत-सा अच्छा साहित्य दब जाता है.

ममता कालिया : मुझे तो ऐसा लगता है कि आज पत्रकारिता ही रचनाधर्मिता के लिए सबसे बड़ा संकट बन गयी है. रचनाकार और पत्रकार ऊपर से देखने पर तो एक लगते हैं लेकिन अंदर कहीं न कहीं मुझे लगता है कि बड़ी प्रतिद्वंद्विता रखते हैं. रचनाकार ने कभी भी इस अभिव्यक्ति को एक लड़ाई के तौर पर नहीं लिया है. मेरा खयाल है कि रचनाकार कहीं अंदर ही अंदर ज्यादा 'लोनली' होता है और वो अपने को इस तरह से पेश नहीं कर सकता कि जिस तरह से पत्रिकाएं पेश करना चाहती हैं. होता यह है कि जब आप कोई बहुत ही संवेदनशील रचना लिख रहे होते हैं तब पत्र आता है कि आप 'जंगल विशेषांक' के लिए रचना भेजिए या आप 'जादू-टोना विशेषांक' के लिए रचना भेजिए, तो एसे समय में किसी को ये शिकायत करना कि रचना के क्षेत्र में सन्नाटा है... इस समस्या को ठीक तरह से समझना नहीं है. ज्यादा जरूरी यह है कि रचना छोटी पत्रिकाओं या बड़ी पत्रिकाओं में अपनी शर्तों पर लिखी जाये.

बटरोही : मेरा आशय यह है कि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आज से 10-15 साल पहले एक जीवंत चर्चा होती थी, एक माहौल था कहानी का... और 'कहानी' पत्रिका थी.

एक पत्रिका हर प्रकार के लेखकों की अच्छी से अच्छी रचनाओं को एक साथ जुटा लेती थी. आज ऐसा नहीं लगता है. छोटी पत्रिकाएं भी जो निकलती हैं पूर्वाग्रहयुक्त हैं... निश्चित विचारधारा या दलगत जुड़ाव दिखायी देता है. बड़ी पूंजीवाली पत्र-पत्रिकाओं के तो खैर अपने व्यवसायिक स्वार्थ हैं. तो ऐसी स्थिति कैसे लायी जा सकती है जिसके माध्यम से हम वही जीवंतता ला सकें जैसा कि ताल्सतोय ने भी एक स्थान पर कहा था कि 'पाठक वर्ग जितना बड़ा होगा और लेखक को अगर ये संतोष होगा कि मेरी रचना अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंच रही हैं तो वह ज्यादा विश्वास से लिखेगा.' हिंदी में यों ही बहुत छोटा-सा पाठक वर्ग है. हमें माहौल बनाने की आवश्यकता है जिससे कि कहानी की जीवंत चर्चा शुरू हो सके.

मधुकर गंगाधर : आज जो आप जीवंत चर्चा का सवाल उठाते हैं इसके शुरू में ही कहा गया कि 'नई कहानी' जब से चली यानि 50 और 60 के दरम्यान, तो कहानी की बड़ी चर्चा थी. बड़ी उमंग से लोग इसकी चर्चा करते थे. समारोह होते थे, गोष्ठियां होती थीं और जीवंत साहित्य रचा जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. अगर इसकी ऐतिहासिक व्याख्या सही ढग से की जाये कि ऐसा क्यों हुआ था, इसका रहस्य आपको पता चल जायेगा. उस आंदोलन में हम तीनों लोग थे ममताजी को छोड़कर. हम तीनों आदमी उसी उठान के हैं. अमरकांत, मार्कंडेय और मैं. और इस तरह के कई लोग भी थे. वह आंदोलन सच कहूं तो मार्कंडेय और कमलेश्वर के 'पान फूल' कहानी संग्रह से ही शुरू हुआ था. आप जरा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखिए कि मार्कंडेय, कमलेश्वर, अमरकांत, शिवप्रसाद सिंह, मधुकर गंगाधर, शेखर जोशी आदि तमाम लोग लगभग एक ही उम्र के थे. एक-दो वर्ष का फर्क था. हम तमाम लोग युनिवर्सिटी की ऊंची से ऊंची शिक्षा ले चुके थे और हम बहुत सेंसेबुल किस्म के लोग थे. सेंसेबुल किस्म से मेरा मतलब है संवेदक, और ऐसे संवेदक नौजवान थे जिन्होंने यह महसूस किया था कि हमारा देश आजाद हो गया. अचानक हमने पाया कि एक स्वतंत्र आकाश हमारे सामने आया है और हम स्वतंत्र देश के नागरिक हैं. तो हमारे मन में भी लगभग वैसी ही भावनाएं उठीं जिस तरह की अमेरिका में. . जब अमेरिका आजाद हुआ तो वहां के साहित्य में एक तरह से रीजनल लिटरेचर पनपा. फॉकनर, स्टीनबेक वगैरह ने लिखा यानी देश की मिट्टी को उजागर करने का चाव हमारे भीतर हुआ. दुनिया में हिंदुस्तान को एक स्वतंत्र रूप से प्रक्षेपित करने का हमारा चाव था. आपको बटरोहीजी, सुनकर ताज्जुब होगा कि एक छाते के तले यानि एक पत्रिका के भीतर एक संपादक ने... भैरवप्रसाद गुप्त ने... 54 से लेकर 58-59 तक लेखकों को समेटा, लीजिए, साहित्यकारों के नाम गिनिए—मार्कंडेय, कमलेश्वर, मधुकर गंगाधर, अमरकांत, शेखर जोशी सिद्धेश, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, फणीश्वर नाथ रेणु, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती.. इन तमाम लोगों की कहानियां उसी दरम्यान आयीं. आप दुनिया के किसी लिटरेचर में नहीं देखिएगा कि महज 4-5 वर्ष के भीतर किसी भी विधा का, चाहे कहानी हो कि कविता हो, इतना सीधा 'अपरग्राफ' उठा हो, जितना कि हिंदी में कहानी का ग्राफ.

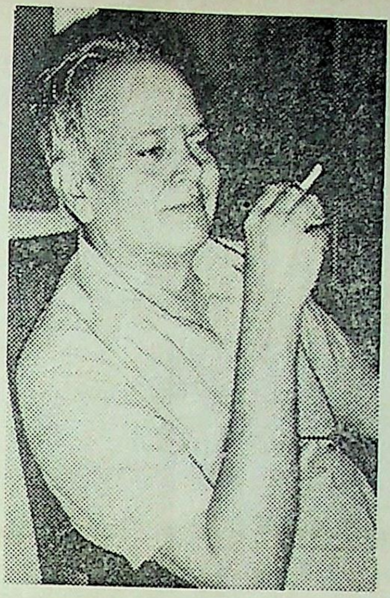

● अमरकांत : अच्छा साहित्य भी छपता है...

बटरोही : मुख्य प्रश्न शायद यह है कि जैसा मधुकरजी ने कहा, एक समय में, एक छोटे से अंतराल में, बहुत से लोग एक साथ, एक ताजगी के साथ आये थे. आज वही लोग जिन नामों का आपने उल्लेख किया था उस तरह की जीवंतता रचना के माध्यम से या चर्चाओं के माध्यम से प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं.

मार्कंडेय : असल में साहित्य या कला के संबंध में इस तरह की विचारधारा रखना कि जो आज से 10-15 वर्ष पहले हुआ था वह जैसा का तैसा आज क्यों नहीं हो रहा है और आगे क्यों नहीं होगा, ये उचित नहीं है. जीवन के संदर्भ बदलते रहते हैं.जीवन के संदर्भों के साथ साहित्य बदलता रहता है. जिस स्थिति की आप बात कर रहे हैं, तब से हिंदुस्तान में बहुत पानी गुजर चुका है और आज स्थिति ये है कि कैपिटलिज्म जहां से प्रारंभ हुआ था, आज हमारे जीवन के सभी अंश को उसने अपने चंगुल में ले लिया है. वहीं आप जब सीमित पाठक-वर्ग की बात कहते हैं तो आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हिंदुस्तान में ऐसी पत्रिकाएं हैं जिनके कि 5-10 लाख के एडीशन हो रहे हैं और बिक रहे हैं. साहित्य में हिंदुस्तान की कोई पत्रिका नहीं है. क्योंकि साहित्य की पत्रिकाएं बहुत कम बिकती हैं. जबकि किसी भी देश में पूंजीवाद का विकास होता है, पूंजीवाद के विकास के साथ साहित्य और संस्कृति की वही हालत होती है जो हालत हमारे देश में अब शुरू हुई है. अभी तो आपको समझ में आता है कि जो परिस्थितियां आपको दिखाई दे रही हैं वे शायद बहुत अच्छी परिस्थितियां हैं. आगे आने वाले समय में साहित्य और संस्कृति का और भी बुरा हाल होने जा रहा है. इसलिए कि पूंजीवाद का मनुष्य की अस्मिता से कोई मतलब नहीं होता. सृजन से बहुत दूर-दूर तक कोई मतलब नहीं होता. इन तमाम चीजों में उसकी रुचि इस प्रकार की होती है कि सृजनात्मक प्रवृत्ति और मनुष्य की अस्मिता धीरे-धीरे पैसों के रूप में बदल जाए. इसलिए अब यह उम्मीद करना कि उस तरह का आंदोलन फिर होगा, 'ज्ञानोदय' निकलेगा और 'धर्मयुग' में भी साहित्य छपेगा बेकार है. ये तो गनीमत कहिए कि आज भी पूंजीवादी पत्रिकाएं साहित्य छाप रही हैं. साहित्य तो अब विकसित होगा, संघर्षशील जनता के आंदोलन में. पूंजीवाद का विनाश करने वाली शक्तियां अब आगे बढ़ेंगी, उनका संघर्ष जब तेज होगा तो उनके साथ लग कर के

जहां तक लेखन का सवाल है, कहानी-लेखन का, पुरुष जो लिख रहे हैं उसमें अधिकतर पुरुषों की ही समस्याएं रहती हैं. . . लेकिन जो क्रांतिकारी लेखन हो रहा है या जो दूसरी धारा के भी लेखक हैं, अधिकतर उसमें आप देखेंगे कि पुरुषों की ही समस्या अधिक रहती है नारी की बिलकुल ही नहीं रहती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो साहित्य सामने आयेगा तो फिर व्यापक आंदोलन होगा और रचनाशक्ति का विकास होगा.

मधुकर गंगाधर : मार्कंडेयजी आपने ठीक ही कहा कि आज तो स्थिति विकट है. पूंजीवादी अर्थशास्त्र का एक नियम है कि पूंजीवादी व्यवस्था में उपभोक्ता वह नहीं उपभोग में लाता है जो उसकी जरूरत होती है. उसके उपयोग में वही चीजें ली जाने लगती हैं जो पूंजीवादी चाहता है. एक दूसरा बड़ा सवाल है, ममताजी, मैं आपसे जानना चाहूंगा क्योंकि आप तो यूनिवर्सिटी कालेज से संबंधित हैं और क्लासिकल चीज आज भी यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती है. कहीं ऐसा तो नहीं हुआ है ये जो कला-कहानी-कविता सारी चीजों का 'फार्म' था कला का स्वरूप था, उसका भी ढर्रा टूट-टाट गया है. यहां मैं फार्म की बात कर रहा था. यहां बड़े-बड़े मकान बनते थे और बहुत ऊंची छत होती थी. ऊची खिड़कियां होती थीं. लेकिन आज तो ऐसा नहीं है. आज तो मकान का नक्शा ही बदल गया...तो अगर स्थापत्य इस तरह बदला तो क्या कला में इस तरह का कोई परिवर्तन नहीं आ सकता है? मुझे लगता है कि कहानियों में कुछ इसी तरह की चीज हुई. इसलिए पहले की कहानियों से आज की कहानी की तुलना न करें तो अच्छा रहे.

ममता कालिया : आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं. वैसे मधुकरजी, थोड़ी देर पहले आप ही ने कुछ 'बाक्स आफिस' नाम गिनाये थे कहानी के क्षेत्र के और मेरा ख्याल है कि इस तरह से इसे देखना चीज को शायद बहुत ठीक न होगा क्योंकि वही कहानी मोहन राकेश की लिखी हुई जो उस जमाने में बड़ी क्रेज रही होगी आज हम लोगों को बिल्कुल ठंडा छोड़ जाती है. क्योंकि मैंने कई बार यह देखा है कि यूनीवर्सिटी में कालेज में जैसा कि आपने कहा, संपर्क जब मेरा होता है छात्रों से तो मैंने ये पाया कि वो ज्यादा क्रिटीकल होकर साहित्य को आज ग्रहण करने लगे हैं. वो जमाना गया जब वो 'हीरोवर्शिप' के अंदाज में चीजों को लेते थे. आजादी के बाद से राजनीति में जैसे-जैसे हीरो एक-एक कर ढहते गये हैं इसी प्रकार से साहित्य में भी वो एक-एक करके खत्म होते गए हैं. आज कोई जैनेंद्र की तरह दार्शनिक या अज्ञेय की तरह आधुनिक या किसी खास लेखक की तरह मुस्कराना इस तरह के नाजोअंदाज को 'कलटिवेट' नहीं करता है. जब-जब हमने साहित्य का मूल्यांकन किया है तो 'कल्पना', 'कहानी', 'नई कहानियां', 'माध्यम' जैसी पत्रिकाओं से किया है तो आज भी जब हम वर्त्तमान लेखन का मूल्यांकन करेंगे तो जाहिर है कि वो 'दस्तावेज', 'पहल', 'अब', 'आवेग', 'जमीन' लघु पत्रिकाओं से ही हम उसे करेंगे. ये बात ठीक है कि एक जमाने में सबसे बड़ी व्यावसायिक पत्रिका ने 'कथा दशक' आयोजित किया था और उस समय कहानियां काफी अच्छी आयीं... 'सारिका' ने काम किया. लेकिन इस बीच मैं समझती हूं कि रचनाकार ने अपने को काफी उदासीन किया है क्योंकि इन पत्रिकाओं ने अपना दृष्टिकोण बहुत बदल दिया है.

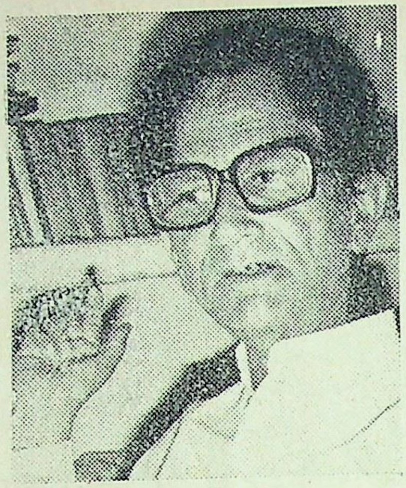

● **मार्कंडेय : हिंदुस्तान में बहुत पानी गुजर चुका है...**

हिंदी में साहित्य का व्यवसायीकरण अभी बहुत कम हुआ है बंगला की अपेक्षा. और ये निश्चय पूर्वक मैं आप लोगों से कहना चाहता हूं वह जनता के साथ है... और जनता के संघर्षों में है. साहित्य का उद्धार सिर्फ संघर्ष के भीतर ही हो सकता है... जिस तरह समाज का उद्धार संघर्ष के भीतर है.

बटरोही : अभी मार्कंडेयजी ने अच्छी बात कही थी कि जनता के बीच से अब साहित्य जन्म लेगा. लेकिन जो इस समय लिखा जा रहा है, हमारी जो कहानियां लिखी जा रही हैं उनमें ऐसा लगता है कि बहुत कम कथाकार हैं जो खुद को बनाये रख सके हैं. लगता है, पुराने लेखकों की अपेक्षा नये लेखक आज की यथार्थ स्थितियों को ज्यादा प्रभावशाली ढंग से चित्रित कर रहे हैं. नये लेखकों में तो दर्जनों नाम ऐसे हैं जो बहुत अच्छा लिख रहे हैं. . . .

मार्कंडेय : हां, लेकिन अगर उन नामों में कुछ नाम आप बताते तो ज्यादा अच्छा था. उस पर बातचीत होती तो मैं आपको. . .

बटरोही : मैं नाम गिनाने ही जा रहा था. 'एक दुनिया सामानांतर' के लेखकों के बाद गिरिराज किशोर, गोविंद मिश्र, काशीनाथ सिंह तो अच्छा लिख ही रहे हैं इधर आठवें दशक में रामधारी सिंह दिवाकर, सतीश जायसवाल, संजीव, पंकज बिष्ट, मृणाल पांडे, आदि लेखक अच्छा लिख रहे हैं. 'जनसत्ता' के पहले अंक में ही पंकज बिष्ट की एक कहानी नये शिल्प की ओर बहुत ही प्रभावशाली प्रकाशित हुई थी—'आवेदन करो' इसके अलावा संजीव की कुछ कहानियां हैं. महिला लेखिकाओं में मृणाल पांडे की कहानियां हैं जो इस समय की त्रासदी को व्यक्त करती हैं. ये तो मैंने वो नाम बताये जो इस समय के हैं यानी सत्तर के बाद से लिख रहे लोगों में हैं. कुछ पचास के बाद के लोग हैं जो बहुत अच्छा लिख रहे हैं, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, शैलेश मटियानी वगैरह. . . वे लोग उसी ताजगी से लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं जिससे पहले लिख रहे थे. मेरा आशय तो यह था कि इस समय भी लोग लिख रहे हैं और काफी ताजगी के साथ लिख रहे हैं मगर इसके बावजूद उस प्रकार की चर्चा और जीवंतता नहीं दिखाई पड़ती है. मेरा मतलब था . . .

मार्कंडेय : मैंने आपको बताया कि तभी दिखाई पड़ेगी, इस तरह का प्रभाव पैदा करने की शक्ति जब साहित्य अपने संदर्भों को और अपने समाज के जीवन को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित करेगा और उसके यथार्थ को उद्घाटित करेगा. तब निश्चित ही साहित्य की चर्चा होगी इसमें दो मत नहीं हैं. लेकिन इस बात को यहीं छोड़कर मैं भाई अमरकांत से यह जानना चाहता हूं कि पिछले पांच वर्षों में किसी नये कहानी लेखक की कहानी उन्होंने पढ़ी है? वह किसी एक कहानी का नाम बतायें और हम लोगों को यह बतायें कि वह कहानी उन्हें क्यों अच्छी लगी?

अमरकांत : भाई, मेरी याददाश्त इतनी तेज नहीं है कि मैं कहानी का नाम और उसका विवरण सब बताऊं. लेकिन कुछ कहानीकार बहुत अच्छे उभरकर आये हैं जैसे स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, असगर वजाहत. ये नाम ऐसे हैं जिनकी चर्चा करनी ही पड़ेगी और बहुत आस्था और संवेदनापूर्ण ढंग से कहानियां लिख रहे हैं. वैचारिक तेजी भी उनमें है और आज के जो संदर्भ हैं, आज की जो समस्या है उनके अंतर्विरोधों को उजागर भी कर रहे हैं और वैचारिक दृष्टि भी दे रहे हैं. कहानी का विवरण इस तरह से पूछना बेकार है क्योंकि मैंने पहले ही बता दिया कि मेरी याददाश्त ठीक नहीं है.

ममता कालिया : अमरकांतजी मेरा ख्याल है कि नाम गिनाना उतना ही गलत है जितना कि नाम न गिनाना. ये बात बिल्कुल ठीक है कि किसी एक कहानी को लेकर हम चर्चा नहीं कर सकते. मेरा ख्याल है कि लेखन के क्षेत्र में बहुत ज्यादा विविधिता आयी है तरह-तरह के रचना-प्रयोग हो रहे हैं और कई बार तो ये होता है कि किसी लेखक की एक रचना

● **ममता कालिया: बहुत ज्यादा विविधता आयी है.**

हम लोगों को बहुत आल्हादित कर देती है तो अगली कई रचनाओं से वो बहुत निराश कर देता है. मेरा ख्याल है कि संजीव मेरी दृष्टि में ऐसा नाम है कि जिसने अपनी प्रथम रचना का मेरे ऊपर प्रभाव छोड़ा था. उसकी एक पुरस्कृत कहानी थी. वो भी एक व्यावसायिक पत्रिका 'सारिका' के माध्यम से हमारे पास आयी थी. कहानी बहुत अच्छी थी और बहुत देर तक अपना असर छोड़ती थी. लेकिन उसके बाद उनकी कई कहानियां पढ़ने पर मुझे निराशा हुई. ऐसा बहुतों के साथ

इतना तो हम मानेंगे कि जीवन को जितनी गहराई और संवेदना तथा जिस तीव्रता से औरत जीती है. . . शायद उस तीव्रता तक पुरुष पहुंच ही नहीं सकता क्योंकि वह पुरुष है. यह कहना गलत है कि वे (महिलाएं) चूल्हे-चक्की और 'कनाट-प्लेस' की कहानियां लिखती हैं. . .

है. पंकज बिष्ट की कहानियों के अंश मुझे याद हैं. मनोहरश्याम जोशी का एक पूरा उपन्यास ही मुझे याद है. उपन्यास का नाम है 'कसप'.

मधुकर गंगाधर : ममताजी मैं दूसरा सवाल उठाना चाहता हूं और आप और हिंदुस्तान की लिखनेवाली महिलाएं मुझे माफ करें, आप देखिए, आज जो लिखी जा रही हैं कहानियां, मृणाल पांडे का नाम लिया, मंजुल भगत को रखिए, कृष्णा सोबती को लीजिए इस तरह की महिलाएं कहानियां लिख रही हैं. दूसरी तरफ विजेंद्र अनिल लिख रहा है, दिवाकर लिख रहा है अच्छा. विजयकांत लिख रहा है, सुरेश काटंक लिख रहा है तो इन सबकी कहानियां अगर आप पढ़ेंगे तो लगेगा कि हिंदुस्तान में बिल्कुल दो मानसिकताएं हैं. एक मानसिकता दिल्ली के कनाट-प्लेस की है और दूसरी मानसिकता भोजपुर के गांव की किसी गलियों की है. जाहिर है कि आज जो महिलाएं लिख रही हैं क्यों दिल्ली के कनाट प्लेस की मानसिकता में जी रही हैं? जबकि हमारे पास मन्नू भंडारी, शशिप्रभा शास्त्री जैसे लोगों की कहानियां हैं.

ममता कालिया : मधुकरजी आपने इधर बिल्कुल बुजुर्ग की तरह ताना दिया है कि महिलाएं अपनी जमीन से कटकर लिख रही हैं. मेरा ख्याल है कि पुरुष मानसिकता का इससे अच्छा उदाहरण और कोई नहीं हो सकता. महिलायें इस समय जो लिख रही हैं वो पुरुष कथाकारों के लिए चुनौती बनती जा रही हैं. मैं नहीं कहूंगी कि अधिकांश महिला-लेखन बहुत अच्छा है.

कहानी को लेकर ये जनाना-मर्दाना वाली बात भी मुझे पसंद नहीं है. इन्हें खाली मूत्रालय और प्रतीक्षालय तक रखना चाहिए. जनाना-मर्दाना-वाली साहित्य में बातचीत भी नहीं होती है. लेकिन इधर तेजी से इतनी महिला पत्रिकाएं निकल रही हैं जिनमें कि महिला कथाकारों को प्राथमिकता दी जाती है. इतना तो हम मानेंगे कि जीवन को जितनी गहराई और संवेदना तथा जिस तीव्रता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

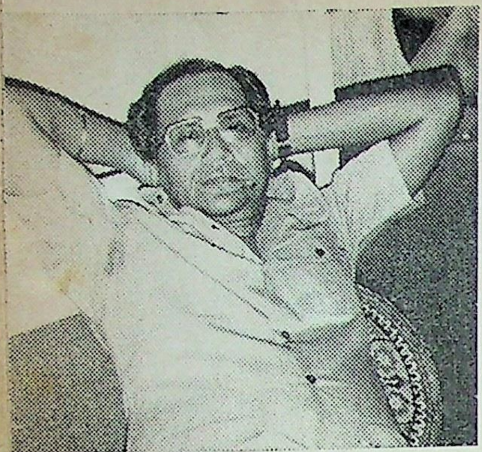

● मधुकर गंगाधर : भाई जरा चुप्पी पर आइए...

औरत जीती है शायद उस तीव्रता तक पुरुष पहुंच ही नहीं सकता क्योंकि वह पुरुष है. पुरुष उस तीव्रता तक नहीं पहुंच सकता. ये कहना गलत है कि वो चूल्हे-चक्की और कनाटप्लेस की ही कहानियां लिखती हैं. वो जमाने गये अब यदि मृणाल पांडे का एक भी पृष्ठ अगर कोई पढ़ ले तो आपको कभी भी ये नहीं लगेगा कि ये चूल्हे-चक्की से जुड़ी हुई महिला है या केवल कनाटप्लेस में घूमने वाली एक उच्छृंखल लड़की. बहुत जरूरी सवालों से लोग जुड़े रहे और जब आप ये कहते हैं कि हमारी पीढ़ी के पास जो मन्नू भंडारी थी, शशिप्रभा शास्त्री थी, उषा प्रियंवदा थी, तो वह तो हमारी पीढ़ी के साथ भी हैं भाई. अभी चुक थोड़ी गई हैं? वो तो अभी भी लिख रही हैं. कई बार होता है एक लेखक बहुत पहले से लिखता रहता है, सन् 50 से लिख रहा है वो सन 84 के लेखकों के साथ भी समकालीन हो जाता है. अपनी पूरी तेजी के साथ अपनी रचनाधर्मिता और पूरी प्रखरता के साथ वो हो जाता है. मन्नू भंडारी इसी तरह से समकालीन हैं. तो मैं नहीं समझती कि वो आपकी पीढ़ी की हैं.

बटरोही : एक प्रश्न ममताजी आपसे. आपने अभी कहा कि पुरुष और स्त्री का जो वर्गीकरण है वो प्रतिक्षालय और मूत्रालय तक ही सीमित रहे, वो वहीं तक सीमित क्यों रहे और जगहों तक क्यों न हो?

अमरकांत : जी नहीं, मैं इस संदर्भ में एक बात कहना चाहता हूं. जहां तक लेखन का सवाल है, कहानी लेखन का, पुरुष लोग जो लिख रहे हैं उसमें अधिकतर पुरुषों की ही समस्याएं रहती हैं तथा आधी जो जनसंख्या है, अब मैं सबके लिए नहीं कहता लेकिन जो क्रांतिकारी लेखन हो रहा है या जो दूसरी धारा के भी लेखक हैं अधिकतर उसमें आप देखेंगे पुरुषों की ही समस्या अधिक रहती है कहीं-कहीं नारी बिल्कुल ही नहीं रहती. अब हम विचार करें. एक जमाने में मैंने एक उपन्यास लिखा था 'सूखा पत्ता' उस पर किसी कम्युनिस्ट नौजवान ने लिखा कि ये तुम 'कोक-शास्त्र' क्यों लिख रहे हो? मैंने कहा कि क्रांति सफल इसलिए नहीं हो रही है कि हमारे साहित्य में, हमारे जीवन में आधी जो जनसंख्या है वो उपेक्षित है. उसका पार्टीसिपेशन नहीं. न हमारे साहित्य में वो पार्टीसिपेशन है. क्रांति जो है इस तरह से सफल नहीं हो रही है जब तक कि ये पार्टीशिपेशन पूरी तरह नहीं होगा...

बटरोही : इस समय हमारे सामने आप लोग तीन तो कम से कम पहले के लेखक हैं और बहुत महत्वपूर्ण लेखक हैं. कुछ ऐसा देखने को मिल रहा है कि इधर लेखन में वो तेजी बंद हो गयी है.

क्रांति सफल इसलिए नहीं हो रही है कि हमारे साहित्य में, हमारे जीवन में आधी जो जनसंख्या है वो उपेक्षित है...उसका पार्टिसिपेशन नहीं. न हमारे साहित्य में वो पार्टिसिपेशन है... क्रांति जो है वह इस तरह से सफल नहीं हो रही है...जब तक ये पार्टिसिपेशन पूरा नहीं होगा...

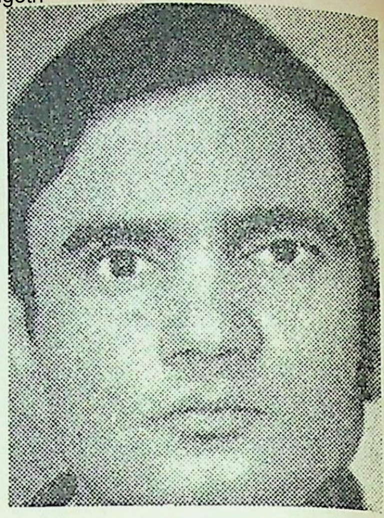

● बटरोही : आखिर इस चुप्पी के कारण क्या हैं...?

इन लोगों की कहानियां इधर कुछ कम देखने को मिली हैं. आप लोग सौभाग्य से साथ हैं. कृपया बतायें कि क्या कारण है इस चुप्पी का? ममता जी तो लिख रही हैं और अच्छा लिख रही हैं. समकालीन हैं. लेकिन आप लोगों में चुप्पी आयी है इसके क्या कारण हैं?

मधुकर गंगाधर : ऐसा है कि चुप्पी का व्रत तो पहले मार्कंडेय जी ने लिया है.

मार्कंडेय : चुप्पी का तो खैर कोई सवाल नहीं है. व्यक्तिगत रूप से मुझसे आप जानना चाहते हैं यानी जो आपके सामने बैठे हुए हैं, अलग-अलग कारण पूछना चाहते हैं? मैंने आपको पहले बताया है कि असल में साहित्य जो है अगर वो जैसा कि ममता जी कह रहीं हैं और अमरकांत कह रहे थे. अमरकांतजी ने बंगाल के लिटरेचर यानी साहित्य के बारे में बहुत-सी ऐसी बातें बतायीं कि जैसे लगता है कि वहां का साहित्य जो है, वहां के सामाजिक यथार्थ और जीवन के साथ बहुत न्याय कर रहा है. वास्तविकता ये नहीं है. हिंदुस्तान के जिन इलाकों में ऐसा साहित्य जो कि व्यावसायिकता से जुड़ गया है वो तो जनता में प्रसारित-प्रचारित हो रहा है. बिक्री उसकी बढ़ गयी है...

मधुकर गंगाधर : भाई चुप्पी पर आइए.

मार्कंडेय : लेकिन जहां तक कि हमारे क्षेत्र का हिंदी में साहित्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवसायीकरण अभी बहुत कम हुआ है.

बंगाल की अपेक्षा और ये निश्चयपूर्वक मैं आप लोगों से कहना चाहता हूं कि हिंदी, 'फ्रिक्शन' जो है वह जनता के साथ है और जनता के संघर्षों में है...

बटरोही : आपकी कहानियां कम दिखाई दे रही हैं इस समय.

मार्कंडेय : इसलिए कमी दिखायी पड़ रही है क्योंकि मैं उपन्यास लिख रहा हूं. अभी मेरा उपन्यास 'अग्निबीज' प्रकाशित हुआ है. वो तीन लंबी योजनाओं का उपन्यास है.

उसका दूसरा खंड मैंने पूरा कर लिया है जो आपको 84 में दिखाई दे जायेगा. मैं लिख रहा हूं. मैं उपन्यासों के ऊपर, कहानियों के ऊपर स्वतंत्र रूप से पुस्तकें लिख रहा हूं. ऐसा नहीं है कि चुप्पी है.

चुप्पी हमारे साथ क्या हो सकती है? जो आदमी के जीवन में संघर्षों से, जनता से जुड़ा हुआ है, उसके साथ चुप्पी होने का क्या सवाल है? हम सब चाहे किसी कारण से नहीं लिख रहे हैं, चाहे हम हों, चाहे अमरकांतजी चाहे मधुकरजी हों, तो हम ऐसे लोगों में से नहीं हैं जो कि किसी 'यूटोपिया' में रह रहे हैं. हम जीवन को समझ रहे हैं, उसके विकास को समझ रहे हैं. मैं आपसे पूछना चाहता हूं, आप जवाब दीजिए कि पिछले दिनों जो उपन्यासों का क्रम था जो अच्छी कविताओं का क्रम था, क्या उसमें कभी नहीं आयी है? पिछले पूरे दशक में जिस तरह उपन्यासों की धारा रही थी. अच्छे उपन्यास चर्चा के विषय बने रहते थे उस तरह के उपन्यास कहां आ रहे हैं?

बटरोही : इसके लिए दोषी लेखक ही तो हैं न!

मार्कंडेय : लेखक दोषी नहीं है असल में आप अपने मस्तिष्क को इस तरह से जोड़िये कि लेखक जो है वह अपने दायित्व का निर्वाह पूरी सामाजिक प्रक्रिया के भीतर ही रहकर करता है. कभी-कभी ऐसी स्थितियां आती हैं कि लिखना बंद हो जाता है. लेकिन मरेगा नहीं. सृजनशीलता मनुष्य से कभी दूर हो ही नहीं सकती. लेकिन कभी कमी आती है, कभी तेजी आती है कभी अनुर्वर पठार आ जाते हैं बीच में जिसको कि आदमी तोड़ता है उन सच्चाइयों को आगे बढ़ने के लिए. कभी-कभी समाज में इतना गतिरोध आ जाता है तो समझने में लेखक रुक जाता है.

लेखक दोषी नहीं है. असल में आप अपने मस्तिष्क को इस तरह से जोड़िये कि लेखक अपने दायित्व का निर्वाह पूरी सामाजिक प्रक्रिया के भीतर ही रहकर करता है. कभी-कभी ऐसी स्थितियां आती हैं कि लिखना बंद हो जाता है. . . लेकिन मरेगा नहीं. . . सृजनशीलता मनुष्य से कभी दूर नहीं होती...

वो गलतबयानियां नहीं करना चाहता. जैसा कि मैंने पहले ही कहा था कि साहित्य का उद्धार सिर्फ संघर्ष के भीतर ही हो सकता है. जिस तरह से समाज का उद्धार संघर्ष के भीतर है. साहित्य जो है जनता के सामाजिक संघर्ष से जुड़कर के ही अब महत्वपूर्ण विधा के रूप में सामने आ सकता है.

मधुकर गंगाधर : अब लगता है कि मार्कंडेय भाई आपने जिस तरह से कटघरे में खड़े होकर आपने सफाई दे दी मैं कुछ दूसरी तरह से देना चाहूंगा. और वो ये कि हम लोगों ने चुप्पी नहीं लगायी है. लगातार लिख रहा हूं. पिछले वर्ष 'सारिका' में मेरी कहानी छपी थी. 'उठे हुए हाथ' आप जानते हैं, नक्सलाइट आंदोलन से संबंधित थी और बिल्कुल गांव की कहानी थी और उसी तेवर की कहानी जिस तेवर की 57-58 में कहानी लिखी थी, लेकिन सवाल ये उठता है कि पहले यदि एक कहानी-संग्रह आता था, एक अच्छी कहानी आती थी तो उसकी चर्चा बड़े पैमाने पर होती थी. आज ऐसा कुछ हो गया है उस तरह की चर्चा नहीं होती. लगता है, कहानी लेखक तो बहुत लोग हैं, कहानी की चर्चा करने वाले लोग ही इधर कम हो गये हैं. यह भी अभाव है. एक बार हमने 'नया' नामक पत्रिका निकाली थी. 'नया' नाम से उसमें एक नया प्रयोग हम लोगों ने किया कि कहानियां मंगवाई कमलेश्वर की और उसमें मैंने मैंने नाम रख दिया 'गंगेश गुंजन' और और वह भेज दी मुद्राराक्षस के पास कि कि अपनी राय भेजो. इसी तरह से गंगेश गुंजन की कहानी थी उस पर लिख दिया कमलेश्वर और सिद्धेश को भेज दिया कलकत्ता कि इस पर अपनी राय लिखो.

तो जो राय आयी उसको मैंने छाप दिया. उससे ऐसा हुआ कि कमलेश्वर की कहानी पर जिस आदमी ने टिप्पणी दी थी (नाम मैं अभी नहीं बताऊंगा) उसने लिखा "भाषा बड़ी लचर है और कहानी सुगठित नहीं है" और वो कहानी थी 'कितने पाकिस्तान' 'नया' में पहली मर्तबा छपी और बड़ी प्रसिद्ध हुई. उसी तरह गंगेश गुंजन की कहानी जिस पर कि कमलेश्वर का नाम था कहा कि साहब ये तो बड़ी कटी-छटी बड़ी ही दुरुस्त कहानी है. लेकिन पता नहीं कटी-छटी कहानी लिखने वाला गंगेश आज कहां है? तो कुछ ऐसा भी हिंदी साहित्य का दुर्भाग्य है कि पाठक पहले नाम पढ़ लेता है फिर कहानियां पढ़ता है. जैसे पढ़ता है कि इस कहानी का लेखक मार्कंडेय है, मधुकर गंगाधर है. ये तो सन् 57 से लिख रहा है, आज की कहानी कैसे लिख सकता है? लेकिन कभी-कभी हम लोग चैलेंज में भी कहते हैं कि भाई ये कहानी पढ़िए और आज के जो लड़के लिख रहे हैं, उनकी भी पढ़िए तो विजेंद्र अनिल की कहानी पढ़िए जो नक्सलाइट आंदोलन से संबंधित है और हम लोगों की भी पढ़िए. □

● प्रस्तुति : बटरोही

● छाया : विजय अग्रवाल एवं सुनील सक्सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरुप चाल

नरेंद्र निर्मोही

रात को कुत्ते भी भौंकते हैं, रमेसर महर को आज पहली बार महसूस हुआ. उसने घड़ी देखी. रेडियम की सूइयां डेढ़ बजा रही थीं. हुक्के को दूर सरकाते हुए हुए उसने लिहाफ ओढ़ा, हनुमान चालीसा पढ़ा और करवटें लेने लगा. उल्लुओं के रोने की आवाजें आने लगी तो वह बुदबुदाया. . . 'ससुरे गांव में उल्लू, कुत्ते ही बसते हैं! सोने नहीं देते. दो घड़ी आंख लग जाती तो सरीर नरोआ हो जाता. अब नींद तो क्या ही आयेगी. इंतजारी में न सोते बने न उठते!' दूर सरकाया हुक्का पास में खींच गुड़गुड़ाते हुए वह कल्पना में खो गया कि इब तक तो वे सभी वहां पहुंच चुके होंगे! उसने घड़ी फिर देखी. हां-हां, निश्चित रूप से वे बंतो के ठीये के बाहर खड़े होंगे. साली बंतो है बड़ी जिगरे की औरत. अपने सामने किसी को पानी नहीं मांगने देती. ससुरी रूपा तो है ही किस बाग की मूली! साले मेरे हाथ नहीं देखे. कंचे खेलने में ही जिंदगी बरबाद नहीं की मैंने. तेरी क्या बिसात जो रमेसर के आगे चीं-चपाड़ करे. मैंने अपनी मरजी से खुल-खेल दे रखी थी. अब तक तो गांव में किसी को खांसने-खखारने नहीं दिया. नराते, बलाकी को भी जवानी का जोस चढ़ा था. उफनते दूध-सा बिठा दिया. नेतागिरी पके-बेर-सी न झाड़ दी तो कहना!

रमेसर ने घड़ी देखी. दो बजने में चार मिनट थे. चाहा कि पलक झपकते ही चार मिनट शेष हो जायें और उसे अपनी जुबान का जंग उतारने का मौका मिले. खाट के नीचे से गुरगाबी निकाली. मौके पर तो कुछ मिलता नहीं. वक्त पर न पहुंचा तो सब चौपट हो जायेगा.

उसके सामने रूपे का कल सुबह बदल जानेवाला चेहरा घूमने लगा. मुंह सूजा हुआ, जगह-जगह पर खरोंचें. बिखरे-बिखरे बाल. नजरें जमीन में गड़ी हुईं, हाथ जुड़े हुए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपे का रिरियाना और बंतो का बयान, 'हुजर वक्त तो ठीक से याद नहीं. हां, रमेसी के यहां तब रोसनी जल रही थी. मैं पेसाब के लिए बाहर निकली तो मैंने हल्की-सी सर-सराहट सुनी. पहले तो मैं घबरा गयी, फिर गौर किया तो रूपा सामने खड़ा था. मैंने सरसरी तौर पर पूछा, "रूपे इस वक्त तुम यहां?" बोला, "हां भाभी, तुमसे कुछ बातें करनी हैं. तुम तो जानती हो, इन दिनों गांव की हवा कितनी खराब है? हर कोई हमें दबाकर ही रखना चाहता है. हम जिनावर थोड़े हैं कि जब जी चाहा जोत लिया. कुछ दिनों में इधर एक बहुत बड़ी 'मीटिन' हो रही है कामगरों की. उसमें शामिल होना है. मैंने कहा, 'ये सब बातें कल अपने भैया से कहना, आज तो वो इधर हैं नहीं.' इतना सुन, कि मेरा खाविंद इधर नहीं, पट से अंदर घुस आया और लगा फिर मीटिन की बातें करने. मैं खामोश सुनती रही. सोचा, क्या मालूम सच्चो में हमारा हमदर्द हो. थोड़ी ही देर में लगा मसखरियां करने. बहुतेरा कहा कि दफान हो जा अपनी इज्जत लेकर वरना शोर मचा दंगी. ये नहीं माना. बोला, 'भाभी तो आधी घरवाली होती है और आगे जो इसने किया, कहा, तो वो मैं इज्जतदार लोगों के सामने बयान नहीं कर सकती. . ये देखो. . .!' और इतना कहते ही जब चिथड़ों-वाली सलवार जम्फर पंचायत को दिखायेगी तो सभी आग बबूला हो उठेंगे और बंतो सुबकती हुई जब कहेगी, 'यदि पंचायत मुझ गरीबनी की फरियाद नहीं सुन सकती तो इस बदनाम जिंदगी से मरना कहीं बेहतर है. शोर न मचाती तो और न जाने क्या होता मेरे साथ?' और उसके बाद शोर सुनने के बाद आये लोगों के बयान होंगे. रूपा लाख कहे कि यह रमेसर महर की चाल थी. भला कौन मानेगा? सजा भी तो मैं ही सुनाऊंगा. हल्की सजा दंगा तो सभी हैरत में पड़ जायेंगे कि अगर रमेसर की ये चाल होती तो मामूली-सी माफी मांगने की सजा देकर हाथ आये शिकार को वो क्यूंकर छोड़ता? ये कहां जानते हैं कि अपने विरोधी को अगर तुम इखलाकी मौत मार सको तो वह सदा-सदा के लिए मर जाता है. आनेवाले चुनावों में हरामी को एक पंची दिला दूंगा. गांव की हवा एक बार खराब हो जाये तो ताव में नहीं आती!'

पड़ोस से रोने की आवाज आयी तो वह हड़बड़ाकर उठा. पांवों में जूती डालने को ही था कि सहसा उसे ध्यान आया कि अरे ये तो बच्चा रो रहा है. वह फिर निढाल हो बिस्तर पर गिर पड़ा.

ज्यों-ज्यों वक्त सरक रहा है, उसकी हताशा, झुंझलाहट उकताहट, शंका बढ़ती ही जा रही है. कहीं हरामी लंबी तानकर ही सो न जा गये हों. बंतो का भी क्या भरोसा? इन हरामियों का कौन दीन धर्म है? बना-बनाया खेल ही बिगाड़ दें. गद्देदार बिस्तर की गरमाहट दहकते अंगारों-सी लगने लगी और हुक्के का एक लंबा कश खींचा. धुंआ अंदर तक धंसता चला गया और रमेसर जोर-जोर से खांसने लगा. पानी गटका तब कहीं खांसना रुका. वह बिस्तर से उठा और बाहर तक आया. आसमान में टिमटिमाते सितारों को देखा और फिर बंतो की झुग्गी की तरफ मुंह किया, लेकिन उधर अंधेरा था. पांच सात मिनट वह निर्निमेष-सा अपनी हवेली तबेले और पास में बने शरीकों के घर देखता रहा. उसकी हवेली गांव की सबसे बड़ी हवेली है. इस एहसास ने हल्का-सा सुकून दिया. इन हवेलियों को बनाये रखना कितना मुश्किल हो गया है. वह बुदबुदाया. तेज हवाओं ने उसकी कनपटियों को सुन्न कर दिया और हाथ उड़द के आटे से अकड़ने लगे तो वह फिर बैठक में आ गया.

युवा-लेखन कहानी प्रतियोगिता

देश का कोई भी हिस्सा क्यों न हो, बेगारी के जुल्म सहनेवाले लोगों के दुख एक से हैं! तो फिर क्या वजह कि वे सब एक होकर नहीं रह पाते?—शोषण के विरुद्ध संघर्षशील लोगों की उत्प्रेरक गाथा सुनाती जुलाई, १९८४ की पुरस्कार विजेता कहानी. . .

सारी बस्ती बंतों की झुग्गी के आसपास जमा है. गोया किसी दुश्मन की चौकी चारों तरफ से घेर ली गयी हो. मेघ, देसू, नरायने ने बस्ती को कानोंकान खबर कर दी है कि बंतो के ठीये पर माधो का रूपा है.

बंतो, जिसे सभी चढ़ी आंख से देखते हैं. बंतो जिससे कोई भी, कैसा भी मजाक कर लेता है. बंतो जो कभी-कभार खुद भी आंख दबा लेती है. बंतो जिसका मर्द अफीम गांजे में धुत्त रहता है. बंतो जिसने एक बच्चे को जन्म दिया था, उसे चूमा-चाटा था और पहली बार जब तुतलाती भाषा में उसने बंतो को 'अम्मा' कहकर पुकारा तो उसे लगा था कि दुनिया में कोई उसका भी है. किंतु चंद रोज बाद जब बच्चा घातक रोग से चल बसा तो वह पागलों-सी गांव की पगडंडियों पर, आग लगे घर में से निकलते बदहवास प्राणी-सी दौड़ती रही थी.

बंतो शाम को काम से फारिग हो बस्ती की ओर लौटती तो बनी पगडंडियों की नजरअंदाज कर, वह नयी पगडंडी बनाने लगती. रोज उसी पर से हो गुजरती और कुछ ही दिनों बाद वह गांव की पगडंडी बन जाती. ऐसी नहीं कि बाकी बस्ती के लोग दूध के धुले हैं और उनमें लड़ाई रोना-धोना नहीं होता, किंतु खुद लड़ते या रोते मजा नहीं आता न, दूसरा लड़े तभी तो मजा लिया जा सकता है.

बंतो और जिया का आपसी झगड़ा महाभारत को भी मात देता है, लेकिन पिछले कुछ महीनों से मरघट-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

▣ सोम ठाकुर

अब हंस के गले से न लगा पाये है बस्ती,
दहशत की सजा देती चली जाये है बस्ती.

हर आदमी को खौफ है वहशी मचान का,
वो कौन है जिसपै कि तरस खाये है बस्ती.

जंगल बटोर लायीं कहां से ये निगाहें?
जब देखो बियाबां-सी नजर आये है बस्ती.

जागीर दिल की किसके यहां गिरवी रखी है,
फागुन के राग-रंग से अलसाये है बस्ती.

सहमे हुए झूले हैं कि गुमसुम है छमाछम,
सावन को बुलाने में भी शरमाये है बस्ती.

बांहों में बांहें भर के वो मिलना कहां गया,
अब तो दुआ-सलाम से कतराये है बस्ती.

फूलों को बीनने के जमाने चले गये,
हर रोज कटे सर की खबर लाये है बस्ती.

तेजाब की नदी है अंधेरा घुली हुई,
डूबे है और डूब के उतराये है बस्ती.

शबनम का खून होके कुचल जाये है कलियां,
जब भी कभी जुनूं में जो अंगड़ाये है बस्ती.

मैं किसका मुंतजर रहूं, किसके पनाह लूं,
खुद मुझको अब तो मुझसे ही अलगाये है बस्ती.

बिजली की तरह तड़के है नजदीक रहूं तो,
यादों में घटाओं की तरह छाये है बस्ती.

चुप्पी छायी रही. उस दिन तो बंतो साक्षात चंडीमाई थी, जिये का सारा नशा हिरण कर दिया. बोली, "हरामी के पिल्ले, जब खुद कमाना-खाना और मरना है तो तेरी घौंस क्यों सहूं? तू आज मरता, अभी मर. घर छोड़ना है तो दफा हो जा. मेरा कौन-सा कोई पीछे रोनेवाला है. समज लूंगी सादी नहीं बनायी कोठा आबाद किया था." बस्तीवाले चटखारियां ले-ले एक दूसरे को सुनाते.

बस्ती वाले इंतजार में हैं कि नाटक का पर्दा उठे. कल्पना में वे बंतो के मुंह से निकलती फुलझड़ियां का मजा ले रहे हैं. साली, पांवों पर पानी नहीं पड़ने देती थी. आज तो कंजरी रंगे हाथों पकड़ी गयी. सर्दी से ठिठुरते फटे-अधफटे चिथड़ों में लिपटे नरकंकाल मजे की गरमाहट आखिर कब तक महसूस कर सकते थे. काना-फूसी होने लगी . . . 'साली, खर्राटे मर रही हैगी पड़ी होगी यार के संग!'

"यूं कब तक इंतजारी में रहोगे?" कलुए ने सलाह दी, "दरवाजा खुलवा क्यों नहीं लेते?"

"हां, हां, यह ठीक है" दो-चार और ने हामी भरी. कलुआ आगे बढ़ा. देसू, मेघू ने मुट्टियां भींची. कलुआ ने गहरी सांस ली और फिर द्वार पर हल्की-सी थपकी दी.

हो-हल्ला होने लगा तो रमेसर तेज-तेज कदमों से चमरौटी की ओर बढ़ने लगा. दिल बल्लियों नाचा. वह चमरौटी में पहुंचा तो देखा बंतो किसी नेता की तरह भाषण पिला रही है, "मरदूदों, तुम्हें अक्कल कब आयेगी? इधर मिंजरों का मेला लगा था जो देखने चले आये. शरम तो नहीं आती बेसिर-पैर की बातें करते. देखो तो घर में कौन है? है कोई, देख ओ कल्लू! अबे, देखता क्यों नहीं? तेरे तो को बस तमासा चाहिए. सारी बस्ती की नजरें बंतो, कलुआ, देसू, मेघू पर हैं और बस्ती भीतर ही भीतर कुनमुना रही है कि नाहक नींद खराब की. बंतो रमेसर को सुनाते हुए बोली, "इधर मुजरा नहीं होता बे कल्लू की औलाद, दो बख्त की रोटी खातर महाभारत होता है!"

रमेसर को समझते देर न लगी कि बंतो बिफर गयी है. रमेसर ने तो बंतो को कुछ इस तरह से देखा मानो कह रहा हो— हरामजादी, रही न छिनाल की छिनाल!

तूफान गुजर जाने के बाद भी, दुबारा तूफान आ जाने की जिस तरह आशंका बनी रहती है, ठीक वैसे ही बंतो के भीतर भी अजाना भय पसरने लगा. वह किस झोंक में ये सब कह गयी. उसने टांगें पूरी तरह फैलायीं तो पल्लीनुमा रजाई में से पांव बाहर आ गये. उसे ठंड महसूस होने लगी. वह उकड़ूं हो गयी. उसने सोना चाहा पर नींद भोर के तारे-सी लुप्त हो चुकी थी. मुंह रजाई से बाहर निकाला, भीतर घुटन महसूस हो रही थी. उसने अतीत को झटक देना चाहा. आंखें बंद कर करवट ली. बंद आंखों में कई दृश्य कौंध गये. उसने घबराकर आंख खोली. अंधेरा था. गहन अंधेरा. सुबह क्या हो गया होगा? कहीं उसे कल्ल: . . आगे की कल्पना नहीं कर पायी वह. फिर करवट ली तो दौन की एक रस्सी चटाक से टूट गयी. उसने बांहें फैलायीं तो शरीर का एक भाग उघड़ गया और ठंड से पूरे बदन में झुरझुरी आ गयी. बंद आंखों में अतीत बेतरतीब फलता गया.

पांच साल पहले की एक शाम. रमेसर की हवेली का तबेला . तबेले के बाहर दुनाली लिये खड़ा रमेसर. रिरियाती हुई वह, "महर, एक बीसी उधारी दे दे, रमुआ को काली खांसी है. धीरे-धीरे चुकता कर दूंगी." उसकी आंखों से बहते टप-टप आंसू.

"बीसी छोड़ पच्चीसी दूंगा, पन एक काम करे तब."

"बोल."

"दिल खुस कर दे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाथ जोड़ती हूं, इ काम नाहीं होगा मुझसे. इ काम ही करना होता तो फटीचर हालत में क्यूंकर रैती. गरीब-गुरबे का भी अपना धरम होता है."

"हां, होता है, होता है" कह रमेसर ने उसे तबेले में खींच लिया था.

कपड़ चिथड़े-चिथड़े हो गये थे तो वह लाज की बेड़ियों में जकड़ी गयी. रुपये वहीं फेंक कर वह सुबकती अपनी बस्ती में आ पहुंची थी. रात को जिया घर पहुंचा तो रोते सुबकते उसने सब कह सुनाया था.

"अरी नुचवा भी आयी और पैसे भी छोड़ आयी?" जिया के मुख से यह सुन, वह सन्न रह गयी,

"तू मरद है रे?"

"इहां कोई मरद नहीं. मरद होने का मतलब है बिन आयी मौत मरना. तू नयी आयी है, धीरे-धीरे सब समझ जायेगी." कह वह गांजे का सुट्टा मारने लगा था. वह रमुआ को छाती से चिपकाये सुबकती रही. रमुआ की काली खांसी बढ़ती गयी और एक दिन वह चल बसा. रमुआ की लाश पर वह खूब रोयी. जिंदगी की एकमात्र आशा भी शेष हो गयी.कभी-कभी मन को तसल्ली देती... 'क्या खबर, रमुआ भी अपने बाप की तरह नामर्द निकलता? उसकी जोरू भी.. ...छि!' वह अपनी बहू के बारे में क्या सोच गयी.

एक दृश्य को झटका तो दूसरा सामने आ गया.

रमेसर का खेत. खेत में निरायी करती वो. खेत की मेढ़ पर हुक्का गुड़गुड़ाता रमेसर. गधे के कान पकड़े खड़ा माधो. मिट्टी के बर्तन उतारता रूपा. बर्तनों की लंबी कतार. माधो के जुड़े हुए हाथ.

"महर जी एक अर्ज है."

"कहो."

"थम तो जानो इ दिनां मां कोयले घने मंहगे हैंगे."

"अनाज तो बहुत सस्ता है न?"

"महर जी, मैं इ तो नहीं कह रिया. पन गरीब-गुरबन तो थनै ही दरखास करेंगे."

"मुझे बकवास सुनने की आदत नहीं है. सीधा बोल, पांच-चार सेर दाने जास्ती चाहिए."

"नहीं हुजूर, इब गुजारा नहीं होता, छह पिरानी हैं."

"मुझे पूछ के पैदा किये थे के?"

"बापू, सीधा क्यों नहीं कहता कि बीस सेर दानों के बदले साल भर बर्तन नहीं दे सकते." रूपे ने काफी देर की बकवास के बाद कहा था.

"छोरे, जुबान संभाल, नहीं तो बत्तीसी झाड़ दूंगा."

"खैरात तो नहीं मांग रहे थम से."

"चुप भी रह" माधो ने रूपे को घुड़कते हुए कहा.

"बर्तन हवेली में छोड़ दो. आती फसल पर पचीस सेर अनाज ले जाना."

"मालिक इ तो कमती है."

"कमती है?" रमेसर ने आंखे तरेरते हुए पूछा.

"हां-हां, कमती है." रूपे ने कहा.

"ये ले, अब हुए जास्ती?" कहते हुए रमेसर ने अपने

पांवों से सभी के सभी बर्तन तोड़ डाले.

माधो ने गधे के कान को पकड़ते हुए कहा, "महर, थनै बर्तनां पर लात नहीं मारी गरीब-गुरबा के पेट पर लात मारी है."

रूपे ने टूटे बर्तनों के टुकड़ों को देखा और फिर रमेसर को और गधे को जोर से कुहनी मारते हुए कहा, "चल बापू!"

निरायी करते उसके हाथ कब रुक गये थे, उसे ध्यान नहीं रहा. वह रमेसर, रूपे और माधो को एक टक देखती रही. मन ही मन उसने सोचा—काश, उसका मर्दुआ भी रूपे की माफिक दिलेर होता, इस हरामी का खून पी जाता. पन उस जनखे को अफीम, गांजे से फुरसत मिले तबी तो कुछ सोचे भी...

रात उतार पर है और सर्दी चढ़ाव पर. गठरी बने रहना बंतों के लिए दूभर हो गया है. ठंड है कि शरीर को चीर-चीर जाना चाहती है. उसने हाथों को बगलों में खूब जोर से दबाया—रोज सोचती हूं कि ऊपर के खुले हिस्से को ईंटों से ढक दूंगी पन शाम तो रोज खेतों में हो जाती है. वक्त नहीं मिलता.

नींद उखड़ी तो बस आने का नाम ही नहीं ले रही है. सारा गांव फैलता सिकुड़ता नजर आ रहा है.

रमेसर द्वारा बर्तन तोड़े जाने की खबर से गांव में हल्की-सी भुनभनाहट तो हुई किंतु हलचल तब हुई जब रूपे ने मिट्टी के बर्तन गधे पे लाद कर शहर में बेच दिये. रूपा शहर से लौटा तो पीपल तले ताश खेलते लड़कों में से रक्खू लुहार के लड़के प्रेमू ने आवाज दी, "रूपे ओ रूपे, आ बैठ ले." वह उनके बीच जा बैठा. ताश खेलते लड़कों ने ताश खेलना जारी रखा. रूपा और प्रेम बातें करते रहे. तभी किसी झगड़े की वजह से ताश का खेल रुक गया तो वे रूपे की ओर मुखातिब हुए...

"कै पैसे बने भई रूपे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ नरेंद्र निर्मोही

जन्म : 8 मार्च, 1952
शिक्षाः एम. ए. (हिंदी)—
"बेहतर जीवन की तलाश में जुटे लोगों के संघर्ष को उनकी मुश्किलों तथा खूबियों और खामियों समेत रेखांकित करना मेरे लेखनकर्म का ध्येय है." —अब तक पंद्रह कहानियां प्रकाशित. 'निर्झर' मासिक का संपादन. एक कहानी संग्रह और एक उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य. संप्रतिः हिंदी अधिकारी.

"तेइस रुपये."

"तेइस?" सभी ने हैरानी से पूछा, "कोई जान-पिछान थी?"

"नहीं."

"तो फिर बर्तन बेचे कैसे?"

"गली-गली घूमा. आवाज दी... 'भांडे ले लो, मिटटी के भांडे ले लो'... बर्तन बिक गये"

"तुम्हें शर्म नहीं आयी तुम दसवीं पास हो!"

"दसवीं पास को भूख नहीं लगती? शहर में हमें जानता ही कौन है?"

"कल फिर जायेगा?"

"कल नहीं, तरसों जाऊंगा."

"मुझे भी ले चलना. मैं दो-चार रंबे-दरांतियां बना लूंगा."

"ठीक है, एक से दो भले."

"उधर मेमें भी क्या घड़े का पानी पीती हैं?" बूढ़े पनेसर ने जिज्ञासावश पूछा

"नहीं बाई, (भाई) मेमें मुंह ऊपर उठाती है और आकाश से पानी टप-टप गिरना शुरू हो जाता है." रूपे ने हंसते हुए कहा.

सभी खिलखिलाकर हंस पड़े. पास ही में गुड़ायी करती वह इतने जोर से हंसी कि सभी की नजरें उसकी तरफ उठ गयीं और पास आ उसने भी बात जोड़ दी, "है न बाई, भगवान की किरपा!"

टूटी-फूटी झोंपड़ियों के साथ-साथ नयी झोंपड़ियां और किसी किसी ने कोठा छतना शुरू किया तो महरों के कलेजों पे छुरियां चलने लगीं.

"हमारे पांव की जूतियां हमारे ही सिर पर चढ़कर आने लगी हैं, रमेसर."

"क्या बतावैं हंसे. इस रूपे की कारिस्तानी है. खुद तो बर्तन बेचने शहर जाता ही था, अब सारे गांव को संग ले जाने लगा है."

"रमेसरा, तूने बर्तन न तोड़े होते तो ये नौबत न आती."

"मुझे क्या मालूम था कि साला रूपा नाक में दम कर देगा. मैंने तो अपनी बिरादरी के भले की सोची थी कि अब अनाज बढ़ा दिया तो अगले साल इ और जास्ती मांगेंगे."

"इन छोरों के नाक में नकेलें डालो. और तो और मिलखी पंडित का बाशा, रतून राजपूत का देबू, पंचू खत्री का छिंदी भी इन छोरों के संग रहवै हैं."

उसी पीपल के नीचे जहां छोरे ताश खेलते थे पंचायत जुड़ी. रमेसर सरपंच पंचायत बुलाने का कारण बताने लगे, "भाइयों, पंचायतें यहां पहले भी हुईं, मजलिसें यहां पहले भी जुड़ीं लेकिन पंचायतें और मजलिसें जुड़ने का कारण जमीन-जायदाद का झगड़ा हुआ करता था या फिर किसी औरत को जबरदस्ती भगा ले जाने या शादी-विवाह-शगन के मामले हुआ करते थे. छोरों के आपसी झगड़ों को लेकर आज तक पंचायत नहीं बुलायी गयी चूंकि हमारे बुजुर्ग उन्हें मुंहफट्टा नहीं होने देते थे. छोरा किसी का भी होता, थोड़ी बेअदबी की नहीं कि बिना लाग-लपेट के डांट देते. पर पिछले साल से न जाने क्यों बूढ़े-बुजुर्ग भी छोरों को शह देते आ रहे हैं. इसी का नतीजा है कि हंसे महर के सतनू और माधो के रूपे में पहले तो गाली-गलौच होती रही और कल फौजदारी हो गयी. गांव का 'रिकार्ट' रहा है कि 'सेर-बकरी' एक ही घाट पर पानी पीते रहे हैं. गांव के छोरे यदि यूं ही दो 'घड़ों में बंटे फौजदारियां करते रहे तो गांव की शांति तो भंग होगी ही, तरक्की भी रुक जायेगी. छोरों को लड़ने से न रोका गया तो गांव दंगों से तबाह हो जायेगा."

"नये रुपयों का जोस है भाई!" किसी ने कहा.

"इसका मतलब कि दूसरों का जीना हराम कर दो?" कोई बीच में से बोला.

"कहावत है न प्यासे जाट को कटोरा मिला तो वह पानी पी-पीकर चित्त हो गया."

"यही बात है." सुरतू लंबड़ ने ताईद की.

"इनके पुरखों ने तो हमारी ही रोटियां तोड़ी थीं. क्या हुआ जो चार पैसे से कमाकर लाने लगे हैं. हरामियों ने ने हालत तो देखों क्या बना दी बेचारे सतनू की."

सतनू के जिस्म पर जगह-जगह पट्टियां बंधी थीं. गोया वह आदमी न होकर रूई की गांठ हो. तीन-चार आदमी उसे उठाये हुए थे. रमेसर महर फिर उठा, "भाइयो, देखी हालत सतनू की. अकेला पाकर रूपे ने चार-छह छोरों के संग बिना किसी बात के पीट डाला. अब आप ही बतायें कि क्या करें?"

"एकतरफा फैसला." रक्कू लुहार ने ऊंचे से कहा.

"क्या मतलब?" दीनू पंच ने पूछा.

पंचायत ने रूपे से पूछा, "झगड़ा क्यों हुआ?"

"हां बई रूपे, क्या बात हुई थी?"

"सिरफ इतनी कि सतनू की हड्डियां कड़की तो पंचायत हरकत में आयी क्योंकि सतनू, हंसे महर का लड़का है. वो गरीब मिलखी पंडित का बाशा नहीं, जिसे इसलिए अधमोआ किया गया कि उसने अपनी बहन को हवस का शिकार नहीं होने दिया, न वह माधो कुम्हार है जिसके बर्तन इसलिए तोड़े गये कि उसने जास्ती अनाज मांगा था, न वह गरीब रतने राजपूत का देबू है जिसे इसलिए पीटा व धमकाया गया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने जास्ती मजूरी मांगी, न वह देवकी झिऊरी है, जिसकी बीस दिहाड़ियों के पैसे इसलिए दाब लिये कि वह सिर से नंगी है. ये सतनू है, हंसे महर का सतनू. इसलिए पंचायत जुड़ी है. पंचायत को इससे क्या वास्ता कि इसने रूपे के बर्तन तोड़े तो क्यों? गांव की छोरियों को छेड़ा तो क्यों?"

"देखो भाइयों, गोदी में बैठकर दाढ़ी मूंड दी है."

"साले को यहीं टीप दें?" मद्दो पहलवान ने दीनू पंच से पूछा.

"अबी ठहरो." दीनू ने फुसफुसाते हुए कहा.

पंचायत की खामोशी को देखते हुए रमेसर को अंदाज लगाते देर नहीं लगी कि इस नाजुक स्थिति को सिर्फ राजीनामे से ही सुलझाया जा सकता है. हालांकि पंचायत बुलाने से पहले वह रूपे को गांव से बाहर कर देने की सोच चुका था.

"मैं कौन-सा कह रहा हूं कि सतनू दूध का धुला है और सारा दोष रूपे का ही है. दोष किसी का भी हो पन छोरे आपस में लड़ें हमें बरदास्त नहीं. क्यों भाइयो, क्या राय है?"

"राजीनामा." किसी ने सलाह दी.

"ये है अक्ल की बात. हम भी यही चाहवैं कि गांव के छोरे 'धड़ेबंदी में न पड़ें."

इधर रमेसर महर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपनी सारी स्कीम फेल हो जाने के गम में डूबा, बंतो चमारी की किरदारगी और अपनी बेवकफी पर झल्ला रहा है! . . . किसी ने सच ही कहा है. औरत जात का क्या भरोसा? फिर छोटी जात की औरत का तो कतई नहीं? हरामजादी यहां तो शेखी बघारती थी कि रूपू उसके बस में है और उसके इशारों पर नाचता है. वक्त आया तो ठुस्स कर गयी. कमजात क्या मालूम कल क्या-क्या बके? अब इसका कुछ इलाज करना ही पड़ेगा! . . . वह फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा. उसके सामने पंचायत जुड़ने के बाद की रात फैल गयी.

यही बैठक. देसू, मेघू और सतनू उस दिन की परोक्ष हार से खिन्न झुंझला रहे थे. . .

"शिकार आज फिर हाथ से निकल गया."

"साले का होसला बढ़ता जा रहा है."

"रूपा तो रूपा, देबू, छिंदी भी ऊंट के पैर से फैलते जा रहे हैं"

"सोये मुर्दे भी हरकत में आने लगे हैं."

इसी बीच पुश्तैनी नौकर कच्ची शराब का डल्लू दे गया था. सभी नशे में धुत्त.

"सतने, देसू ने अबी हाथों में चूड़ियां नहीं पहनी."

"तो मेघू कौन-सा मर गया."

"आप सोचो, इ राजीनामा हुआ? . . .राजीनामा नहीं, मोर्चाबंदी हुई सै, मोर्चाबंदी."

"कैसी मोर्चाबंदी?"

"साले रूपे को इखलाकी मौत मारूंगा. हांड़-मांस को ठोंकने का क्या फायदा"

"कैसी इखलाकी मौत?"

"किसी चमारी के शिकंजे में फंसवा, उसे एक रोज उसी की झोंपड़ी में बुलवा, शोर मचवाकर बेइज्जत करूंगा. ऐसा बेइज्जत कि साला हाथ लगा-लगा देखेगा."

"इस काम के लिए, साली बंतो एकदम फिट है."

"पन, बंतो जरा तीखी छुरी है."

"चमारी और तीखी छुरी? . . .साली के टुकड़े न कर दूं जरा हे-र-फेर करे तो.'"

खाट पर पड़ा रमेसर सोच रहा है कि आशंका आज सही सिद्ध हुई है. बना-बनाया खेल चौपट कर दिया.

पर रमेसर को क्या मालूम कि उस रोज पिछवाड़े खड़ी बंतो ने सब सुन लिया था और सोचा था—हरामियो, देखना अब बंतो चमारी का करिश्मा! बस, उस दिन के बाद से ही बंतो ने अपना कड़ापन मोम-सा धुलाना शुरू कर दिया. कुछ ही दिनों में रमेसर की विश्वासपात्र बन गयी! . . .

रमेसर अभी इस सोच में ही डूबा है कि अबकि भी साली स्कीम फेल हो गयी कि तभी देसू, मेघू, बौखलाते हुए आये, "रूपा, प्रेमू, देबू तो भले इखलाकी मौत मरें या न मरें पन बंतो चमारी का कत्ल हम जरूर कर देंगे. बिल्ली नौ सौ चूहे खाकर हज को निकली!"

देसू, मेघू को बिठाते हुए रमेसर बोला, "यारो, शतरंज में तुरुप चाल नहीं चली जाती. मौके की इंतजार करो."

"तो फिर अब क्या हो?" देसू ने तल्ख आवाज में पूछा.

"तेल देखो तेल की धार देखो."

"कहीं धार देखते-देखते ही रूपा, प्रेमू देबू हमारी छातियों पर आ चढ़े तो?"

"तो . . .?" रमेसर महर गहरी सोच में डूब गया. देबू हुक्का गुड़गुड़ाने लगा. मेघू ने भांग की गोली बनायी और उसे सिगरेट में दबा लिया. □

● बैंक आफ बड़ौदा, डी.-38-ए, अशोक मार्ग, सी-स्कीम जयपुर-302001

चलते-चलते

एक बार स्वर्गवासियों और नर्कवासियों में ठन गयी. स्वर्गवासी आराम से आलीशान बिस्तरों पर बैठे दूध मलाई का मजा लूट रहे थे और नर्कवासी आग में जल रहे थे. स्वर्गवाले नर्कवालों को चिढ़ाने लगे.

नर्कवालों ने बीच की दीवार तोड़ दी और दोनों में झगड़ा होने लगा. जब वे किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके तो स्वर्गवासियों ने फौजदारी का मुकदमा अदालत में पेश करने की बात रखी.

नर्कवालों ने कहा, "लड़ लो मुकदमा. . .मगर वकील कहां से लाओगे. सारे वकील तो हमारे ग्रुप में हैं."

—कमल सौगानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास अखबारों में बुद्धिजीवियों के बयान और अपीलें पढ़ रहा है. वे पंजाब की समस्या पर बयान देते हैं, बड़ा पवित्र—यह महान राष्ट्र है...हिंदू-सिख भाई-भाई हैं... गुरुओं ने प्रेम सिखाया है... हिंसा पाप है. शांति से, प्रेम से समस्या का हल होना चाहिए.

इतने में भिवंडी में हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया. तो फिर बुद्धिजीवियों की अपील छपी—सांप्रदायिकता देश के लिए घातक है. हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई हैं. इस्लाम और हिंदू धर्म दोनों प्रेम और भाईचारा सिखाते हैं. हम ऐसे दंगों की निंदा करते हैं. सब भाई-भाई की तरह प्रेम से रहो.

तुलसी एक बुद्धिजीवी से मिला जिसका नाम इन अपीलों में था. मैंने कहा—आपने अपील की है. आप लोग देश के प्रति बहुत जिम्मेदार हैं.

उसने कहा—अरे गुसांईजी, यह तो डूब पड़े की हर गंगा है. दस साल पहले तक इन झंझटों से मतलब ही नहीं रखते थे—लेकिन तमाम लोगों ने आरोप लगाना शुरू किया कि बुद्धिजीवी-वर्ग गैरजिम्मेदार है. देश की समस्याओं पर ध्यान नहीं देता. इस हल्ले से तंग आकर हमारे नेता हर बार एक बयान बना लेते हैं और हम उस पर दस्तखत कर देते हैं. वह बयान अखबारों में छप जाता है. ऐसा न करें तो लोग चिल्लाने लगें कि इस शहर में दो विश्वविद्यालय हैं, मगर बुद्धिजीवी चुप हैं. हमारी समस्या कोई पंजाब या भिवंडी का दंगा या राष्ट्रीय विघटन थोड़े ही है. हमारी समस्या थी यू. जी. सी. ग्रेड पाना जिसके लिए हमने पांच साल आंदोलन किया. हम 'एक्सीडेंट से बुद्धिजीवी हो गये हैं.

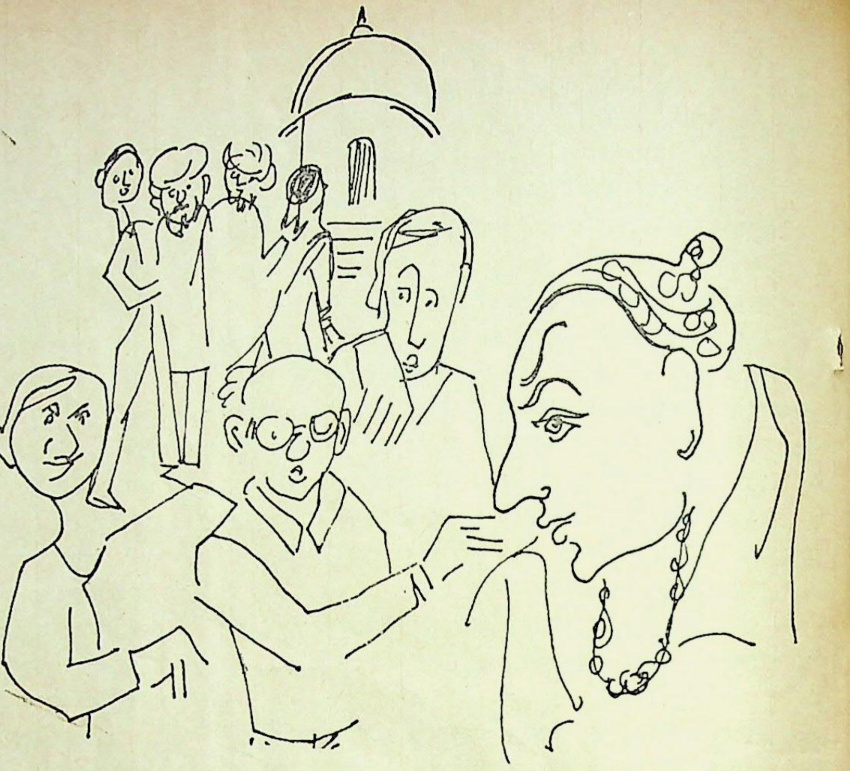

बुद्धिजीवियों से मुलाकात

▣ हरिशंकर परसाई

मैंने पूछा—कैसा एक्सीडेंट? क्या किसी ट्रक दुर्घटना में घायल होने से आपको विश्वविद्यालय में अध्यापक बना दिया गया?

उनके साथी ने समझाया—गुसाईंजी, ऐसा है कि जो मिठाइयों में घटिया स्थान 'अंदरसा' का होता है, वही स्थान नौकरियों में 'मदरसा' का होता है. हम क्या प्रोफेसर होना चाहते हैं? कतई नहीं. महाराज हमनें पूरी कोशिश की कि पुलिस, आबकारी, इनकम टैक्स, सैल्स टैक्स में कहीं 'इंसपेक्टर' ही हो जायें. इन विभागों में बेहिसाब पैसा खाने को मिलता है. पांच साल की नौकरी में लोक कर्म विभाग या सिंचाई विभाग में मामूली इंजीनियर का मकान बन जाता है और लाखों बैंक में होते हैं. पर इन विभागों में कहीं जगह नहीं मिली तो झख मारकर पीएच. डी. की. कुलपति कान्यकुब्ज थे, तो हमारी नियुक्ति लेक्चरार की हो गयी. हम अभी भी थानेदार होना चाहते हैं. हमें बुद्धिजीवी मानकर लोग हमारे पीछे क्यों पड़े रहते हैं. जेबकतरे को कोट और शर्ट के भी नीचे के जेब को काटकर नोट निकाल लेने में क्या कम बुद्धि लगती है? फिर जेबकतरे को बुद्धिजीवी क्यों नहीं माना जाता? जेबकतरों से अपील क्यों नहीं की जाती कि वे लोगों को शिक्षित करें. सिर्फ अध्यापक लोगों को हर बार क्यों तंग किया जाता है?

तुलसी निरुत्तर हो गया. मेरे पास उसके तर्क का कोई जवाब नहीं था. इतने में दो-तीन अध्यापक और आ गये. बात आगे बढ़ी तो एक अध्यापक ने कहा—स्वामीजी, सारी परेशानी तो दिल्ली से शुरू होती है. वहां बड़े-बड़े बुद्धिजीवी हैं, जिनके पास पैसा भी खूब है. हमने माना वे हमसे बहुत अधिक पढ़े-लिखे हैं मगर जब भी कोई वारदात हुई वे आराम से कमरे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास ने पढ़ा अखबार . . . और अटक गया बुद्धिजीवियों की अपीलों पर कि . . . 'हम सब भाई-भाई हैं. . . हमें मिलकर रहना चाहिए' . . . तुलसी को लगा कि कुछ बुद्धिजीवियों से मिलना चाहिए. . .और जब मिले तो हैरान ही रह गये. . . अरे, ये हैं हमारे देश के महान बुद्धिजीवी. . .!

बैठकर बुद्धिजीवियों के नाम अपील निकालकर अखबारों में छपा देते हैं. तब हम छोटे लोगों की मुसीबत आती है और हमें भी बयान निकालना होता है. मगर मैं कहता हूं कि जो दंगे की योजना बनाते हैं, वातावरण तैयार करते हैं, वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि के बुद्धिजीवी प्रोफेसरों से अधिक बुद्धिमान हैं. आप डाक्टर विपिनचंद्र या डाक्टर हरबंस मुखिया से कहिए कि वे एक छोटे शहर में दंगे की योजना बना दें. वे नहीं बना सकते. मगर आप इसी शहर में हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिक संगठनों के छोटे से नेता से कहिए तो वह तुरंत दंगे की योजना बना देगा. ये लोग सब जानते हैं—इतिहास को सांप्रदायिक अर्थ देना, आर्थिक संरचना, धार्मिक मामलों में संवेदनशील बिंदु, व्यक्तिगत मनोविज्ञान, समूह का मनोविज्ञान. ये सब जानते हैं. इसलिए जब चाहे तब दंगा करा देते हैं. असली बुद्धिजीवी ये हैं और इनके बाप हैं, राजनीति के लोग, जो एक सीट पक्की करने के लिए खुशी से सैकड़ों आदमी मरवा डालें.

एक दूसरे अध्यापक ने कहा—गोसाईजी, इस शहर में रोज एक-दो घटनाएं होती हैं जिनसे दंगा हो सकता है—लड़की भगाने की, बलात्कार की, गाय काटने की, मस्जिद में सुअर घुसेड़ देने की. मगर दंगा नहीं होता क्योंकि दंगे करानेवाले नहीं कराते. जब उन्हें कोई राजनैतिक या आर्थिक फायदा दिखेगा तब वे दंगा कर देंगे.

तभी एक दर्शनशास्त्र के वृद्ध प्रोफेसर बोल उठे—देखिए, आप तो संत हैं, ज्ञानी हैं. हिंदू-मुसलमान एक हो कैसे सकते हैं. देखिए, मुसलमान दाढ़ी रखते हैं और हम चोटी रखते हैं. हम बायें तरफ से लिखते हैं और वे दाहिने तरफ से लिखते हैं. हम धोती पहनते हैं और वे लुंगी लगाते हैं, हम गाय का मूत्र पीते हैं, और वे गाय का मांस खाते हैं, उनकी भाषा की जड़ अरबी-फारसी है और हमारी वाणी देवभाषा और संस्कृत है. अब बताइए दोनों एक कैसे हो सकते हैं?

तुलसी ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—पंडितजी, आप तो ऋषि तुल्य है. मंत्र बोलते हैं. आपका गहन तत्व चिंतन है. मुझ जैसा मूर्ख आपसे बात करने योग्य नहीं. जब तक आप जैसे दिव्य मनीषी इस देश में आचार्य हैं, तब तक हमारे शत्रुओं को चिंता करने की बात नहीं है, आप जैसे लोग देश को आत्मघात का दर्शन पढ़ा रहे हैं.

एक अध्यापक ने गंभीरता से पूछा कि गुसाईजी हम लोग करें क्या! हमसे क्या आशा की जाती है. मैंने कहा—1947 के स्वाधीनता संघर्ष के पहले ऐसा सवाल किसी बुद्धिजीवी ने नहीं किया. उस समय बड़े-बड़े बुद्धिजीवी, कवि, लेखक, कलाकार, डॉक्टर, वैज्ञानिक, अपने-आप स्वाधीनता-संग्राम में कूद जाते थे और जेल जाते थे. उन्हें उनके पिता लंदन बैरिस्टरी की डिग्री लेने भेजते थे. वे डिग्री लेकर लौटते थे. वे 'वंदेमातरम' और 'भारतमाता' की जय बोलकर जेल चले जाते थे. अब ऐसा क्या हो गया है कि आप बुद्धिजीवी लोग अपने-आप कुछ नहीं करते?

उसने कहा—प्रभु स्वाधीनता संग्राम के जमाने में त्याग, बलिदान, उत्सर्ग का माहौल था. एक महान उद्देश्य था. तो आदमी स्वयं प्रेरित होकर उस संग्राम में कूद पड़ता था. पर स्वाधीनता के बाद धीरे-धीरे जीवन मूल्य पलटने लगे और त्याग की जगह छीन, झपट, कमाई, भ्रष्टाचार, अपना घर भरना, दो नंबरी पैसा, बेईमानी, झूठ, फरेब जीवन मूल्य हो गये. जो 1947 के पहले गाते थे—प्यारा भारत देश हमारा! वे गाने लगे—भाड़ में जाए भारत देश हमारा! तो हम भी ऐसे ही हो गये. हम भी इसी समाज में हैं न! दंगे करानेवाले बड़े लोगों को सब जानते हैं. उनमें से कुछ को पकड़कर पेड़ में बांधकर उनका चमड़ा निकालना था. 'लिंचिंग' होना था दंगा करानेवालों को. पर वे तो बाइज्जत हवेलियों में रहते हैं. वे संसद में हैं. इतने सांप्रदायिक दंगे हुए. इनमें एक भी बड़ा हिंदू या बड़ा मुसलमान नहीं मारा गया. मारे गये कुंजड़े पिंजाड़े, मजदूर, सब्जी के ठेलेवाले, कुली. अजा पुत्रं बलिं दद्यात, देवोपि दुर्बल घातकः.

मैंने कहा—पर आप लोग छात्रों को सही शिक्षा देकर, समाज को शिक्षित करके ऐसा वातावरण तो बना सकते हैं कि सांप्रदायिक सदभाव हो.

एक अध्यापक ने कहा—गोस्वामीजी, छात्रों के अकेले हम गुरु थोड़े ही हैं. उनके दूसरे भी गुरु हैं जो हमसे ताकतवर हैं क्योंकि उन गुरुओं ने उन्हें बचपन से ही पकड़ लिया है. उदाहरण के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले. अपने छात्र को हम सांप्रदायिकता विरोधी कितना ही पढ़ाएं वह नहीं मानेगा. वह अपने संघ के जो गुरु हैं उन्हीं की सांप्रदायिक द्वेष की बात मानेगा. वे तो तीन साल की उम्र के बच्चे को पकड़ लेते हैं और अपने शिशु-मंदिर में ले जाते हैं. यदि सांप्रदायिक सद्भाव की शिक्षा देना है तो हमें भी तीन साल की उम्र से शुरू करना होगा.

उर्दू के मुसलमान अध्यापक ने कहा—यही हाल मुसलमानों का है. एक तो मस्जिद में जो मदरसा लगता है उसी में मुसलमान के बच्चे दिमाग में मौलवी जहर भर देता है. फिर मुल्ला लोगों का असर बहुत है. फिर जमात-ए-इस्लामी जैसे संगठन हैं जो इस्लाम के नाम सांप्रदायिक जहर भरते हैं. मैं क्लास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कितना ही पढ़ाऊं लड़के घर लौटकर पूरी दुनिया पर इस्लामी हुकूमत के सपने देखते हैं.

एक अध्यापक ने कहा—यह जो शिक्षा बाप-दादों से चली आ रही है, इससे कोई भी सही रूप से शिक्षित नहीं होता. यह शिक्षित-अज्ञानी पैदा करती है. इस शिक्षा से गलत इतिहास और गलत साहित्य पढ़ाया जाता है. इससे वज्ञानिक दृष्टि नहीं बनती. डाक्टर ऑफ साइंस भी अवैज्ञानिक दृष्टि रखता है. एक बार इस शहर में दंगा हुआ. हमारा मुहल्ला सिविल लाइन जैसा है. मेरे घर के सामने के मकान में एक रिटायर्ड मुसलमान अफसर रहते थे. पास में ही रहनेवाले एक प्रोफेसर डी. लिट् मेरे पास आये. वे परेशान थे. बोले—यार, यह सामने जो मुसलमान रहता है, इसके यहां रात को सौ हथियारबंद मुसलमान आ गये हैं. रात को वे हमला करेंगे हिंदुओं पर. मैंने कहा—डाक्टर साहब, मैं तो यहीं हूं. असल में उसकी दूसरी बीवी जो अलग रहती थी, बच्चों को लेकर सुरक्षा के लिए आ गयी है. उस घर में अब कुल चार मर्द बालिग हैं. जरा सोचिए—तमाम बस्ती हिंदुओं की है. मेरा अंदाज है चार में से एक घर में बंदूक होगी. मुसलमानों के मुहल्ले यहां से चार-पांच किलोमीटर दूर हैं. यह किस दम पर यहां गड़बड़ करेगा? पचासों मुसलमान तो उन्हीं के मुहल्ले में मारे जा चुके हैं. यह दंगा नहीं, सुनियोजित हमला है. यह पढ़ा-लिखा मुसलमान अकेला इस घर में इस भरोसे पर रहता है कि यह पढ़े-लिखे, समझदार लोगों की बस्ती है. पर आपके कहने से मालूम होता है कि वह गलती में है. जो बात आप कह रहे हैं वे सामने की झोपड़ियों में रहनेवाले अनपढ़ रिक्शावाले और मजदूर भी नहीं कहते. याने वे समझदार हैं. और हम लोग जो डी. लिट् लिये हुए हैं तर्कहीन और नासमझ हैं.

उन्होंने कहा—अरे, तुमने मुस्लिम-काल का इतिहास नहीं पढ़ा. ये बड़े जालिम और धोखेबाज...

मैंने कहा—इतिहास मैंने आपसे ज्यादा पढ़ा है...आपने गलत नजरिये से इतिहास पढ़ा और मैंने सही नजरिये से.

उनका हठ कम नहीं हुआ. वे बोले तुम्हें मालूम है, आज सुबह भोपालवाली गाड़ी के पास पांच सौ मुसलमान गुंडे बुरके में छिपकर उतरे हैं.

मुझे हंसी आयी. मैंने कहा—आपकी जिंदगी में तर्क का कोई स्थान है क्या! जरा तर्कपूर्वक सोचिए कि जो पांच सौ गुंडे बुरके पहनकर यहां धोखे से मार-पीट करने आये हैं वे क्या सड़क के ऊपर पांच सौ बुरकों का जुलूस निकालेंगे जिससे फौरन पकड़ लिये जायें. जरा सोचिए तो, ये झूठी अफवाह फैलायी जा रही है.

दूसरे अध्यापक ने कहा—हम लोगों ने एक कौमी एकता सप्ताह मनाया. हजारों की संख्या में पर्चे बांटे. इनमें बताया गया था कि मध्ययुग का इतिहास गलत लिखा गया है. जिससे सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है. सही इतिहास हम बताते हैं. हमने बताया कि मध्ययुग में सामंतों व राजाओं की लड़ाई होती थी और ये हिंदू धर्म और इस्लाम के लिए नहीं होती थी, बल्कि क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए होती थी. शिवाजी और राणा प्रताप की सेना में मुसलमान अफसर थे और औरंगजेब की सेना में हिंदू सेनापति. ये लोग धंधे से सैनिक होते थे, हिंदू या मुसलमान नहीं. आम जनता में हिंदू और मुसलमान आठ सौ सालों तक आपस में नहीं लड़े. वे सद्भाव के साथ रहते थे. अब यह तो हमारा प्रचार था. पर हमने कांग्रेस के एक बड़े मुसलमान नेता को बुला लिया भाषण देने के लिए. उन्होंने अपना भाषण यों शुरू किया—हम मुसलमानों ने इस मुल्क पर आठ सौ सालों तक शान से हुकूमत की है. हमने यहां के रहनेवालों को कुचलकर रख दिया था. और आज यह हाल है कि हम 'माइनारिटी कम्युनिटी' कहलाते हैं. गोसांईजी, हमने अपना सिर पीट लिया. देखिए, दोनों तरफ से आग बराबर लगी हुई है. यह एक उच्च शिक्षा प्राप्त हिंदू और उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमान का हाल है. जो गलत और जहरीला हमारे गुरू ने पढ़ा था वहीं उन्होंने हमें पढ़ाया और हम भी अपने छात्रों को वही पढ़ा रहे हैं. और हम पहले ही कह चुके हैं कि छात्रों के अकेले हम गुरू नहीं हैं. इनके दूसरे गुरू भी हैं जिनका असर इन पर ज्यादा है. एक अध्यापक ने कहा—फिर भी जो समझदार बुद्धिजीवी हैं उन्हें अपीलें निकलवाते जाना चाहिए, समझाते जाना चाहिए. इस प्रक्रिया को निराश होकर बंद नहीं करना चाहिए. मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि इसका असर बहुत लोगों पर पड़ता है. अगर हम लोगों ने पिछले सैंतीस साल में ठीक शिक्षा दी होती तो तीन पीढ़ियां सही दिमाग की निकलतीं. हमें आज अपीलें नहीं करनी पड़तीं. पर हम भी लाचार हैं. शिक्षा नीति शिक्षा शास्त्री तय नहीं करते, बल्कि सरकार तय करती है. जो शिक्षा शास्त्री इसमें सलाह के लिए लिये जाते हैं वे सब मध्ययुगीन दिमाग के होते हैं.

एक अध्यापक ने कहा—अभी प्रधानमंत्री ने कहा है...कि हमसे शुरू में भूल हो गयी. हमें आजाद होने के बाद ही शिक्षा पद्धति को बदल देना था.

तुलसीदास ने कहा—यानी प्रधानमंत्री मानती हैं कि पिछले सैंतीस सालों में गलत शिक्षा दी गयी. पर मैं यह कहता हूं यही प्रधानमंत्री सैंतीस साल और बनी रहें, तो भी वे शिक्षा पद्धति नहीं बदलेंगी. यथास्थिति वे भी कायम रखना चाहती हैं. परिवर्तन से वे भी डरती हैं. मगर वे बदलने की बात जरूर करेंगी. □

चलते-चलते

तीन खिलाड़ी एक होटल में बिल चुकाने के प्रश्न पर आपस में उलझ रहे थे. अंत में तय हुआ कि तीनों होटल की इमारत का दौड़कर चक्कर लगायेंगे और सबसे पीछे रह जानेवाला बिल अदा करेगा. होटल का मैनेजर निर्णायक बना और उसने तीनों को दौड़ने का आदेश दिया. आज होटल का मैनेजर तीनों के वापस लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है. □

● शिव कुमार थदानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का जीवन भी अजीब है! आज तक कोई नहीं जान सका कि किन परिस्थितियों में मनुष्य अपनी प्रकृति के विपरीत चलने लगेगा! . . . पर यह निश्चित है कि मनुष्य के भीतर कुछ ऐसा जरूर है कि वह चाहे तो खुद पर संयम जरूर रख सकता है . . . एक पादरी के जीवन की ऐसी ही घटना . . .

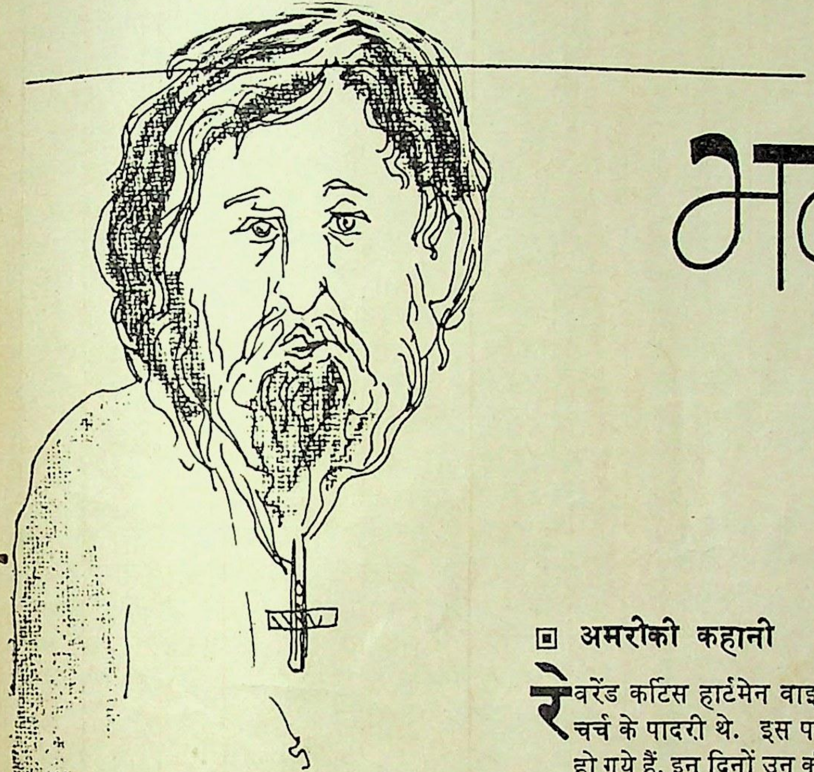

भगवान का घर

▣ अमरीकी कहानी ▣ शेरवुड एंडरसन

रेवरेंड कर्टिस हार्टमेन वाइसबर्ग शहर के प्रेसिबिटोरियन चर्च के पादरी थे. इस पद पर काम करते उन्हें दस वर्ष हो गये हैं. इन दिनों उन की आयु चालीस बरस की है. वह बहुत चुपचाप और गुमसुम तबीयत के आदमी हैं.

हार्टमैन का शरीर विशाल था और भूरे रंग की खूब लंबी दाढ़ी थी. उसकी धर्मपत्नी, श्रीमती सिर्राह के पिता क्लीवलैंड (ओहिओ) में बनियानों के एक कारखाने के मालिक थे. सिर्राह एक अधीर स्वभाव की चुस्त महिला थी. पादरी हार्टमैन शहर भर में सर्वप्रिय थे. चर्च के मालिक उनकी शांत और सादी तबीयत के कारण उन्हें पसंद करते थे. और चर्च के मंत्री की पत्नी श्रीमती ह्वाइट उन्हें एक बहुत बड़ा विद्वान और सुसंस्कृत सज्जन मानती थी.

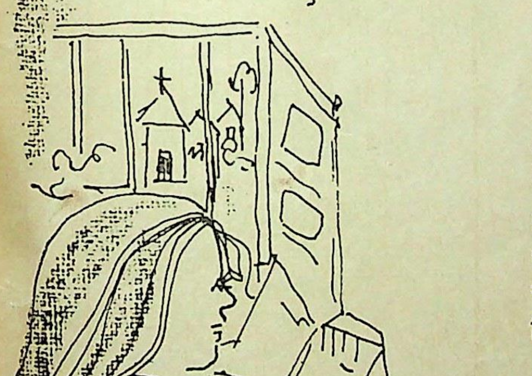

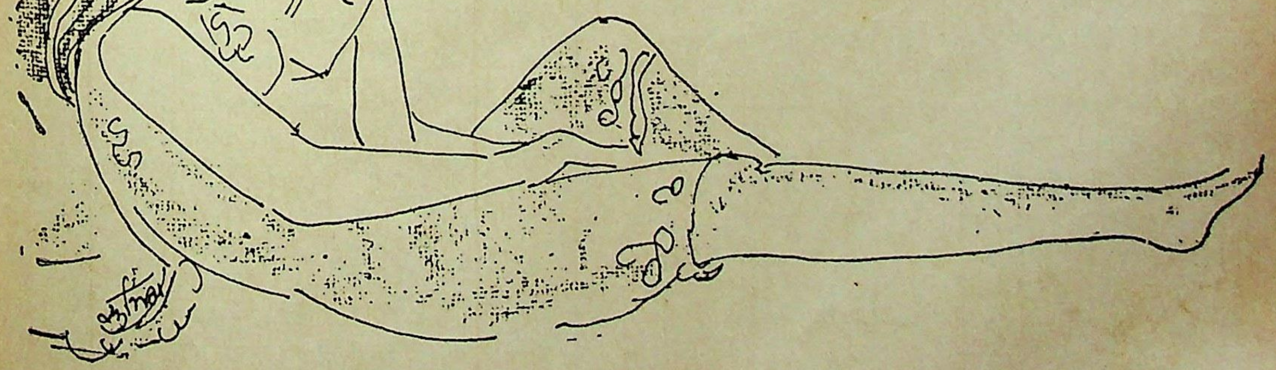

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब से हार्टमैन वाइंसबर्ग में आया था, उसकी खूब अच्छी तरह निभ रही थी. उसके उपदेश चर्च के उपासकों में किसी विशेष उत्साह का संचार नहीं करते थे, मगर उसका कोई दुश्मन भी नहीं था. असल में वह एक बहुत ईमानदार और लगनवाला आदमी था. कभी-कभी तो उसके जी में यह प्रबल अभिलाषा उठ खड़ी होती थी कि शहर की गली-गली में 'ईश्वर! ईश्वर!' चिल्लाता हुआ दौड़े और इन सांसारिक जीवों में ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न कर सके. वह चाहता था कि भगवान किसी दिन उसे अपनी उस महान ज्योति से उद्भासित कर दें, जिसका नवीन, शक्तिशाली और मधुर प्रवाह उसकी वाणी और आत्मा में वह तूफान की-सी ताकत भर दे, जो संसार के नास्तिक जीवों को अनायास अपनी और आकृष्ट कर उन्हें आस्तिक बना दे.

हार्टमैन के स्वाध्याय गृह में, जिसमें बैठकर वह रविवार को भगवान से अपना कार्य भली प्रकार निभा सकने की शक्ति मांगा करता, केवल एक ही खिड़की थी. यह तंग और खूब लंबी-सी खिड़की रोमन ढंग पर बनी हुई थी. खिड़की के किवाड़ों के धुंधले शीशों पर ईसा मसीह का एक सुंदर चित्र बना हुआ था. इस भावपूर्ण चित्र में वह एक बच्चे के सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं.

गरमियों के एक रविवार की सुबह वह अपने इसी कमरे में बैठा था. एक बड़ी-सी बाइबल उसके सामने खुली पड़ी थी. आज के उपदेश के नोट आसपास बिखरे पड़े थे. इसी समय अचानक उसकी नजर नजदीक वाले मकान की खिड़की पर पड़ी. यह मकान चर्च के ठीक सामने गली की दूसरी तरफ था. खिड़की खुली हुई थी. उसमें से, हार्टमैन को दिखाई दिया कि एक नवयुवती अपने बिस्तरे पर आधी लेटी दशा में कोई किताब पढ़ रही है, अपने होंठों में उसने एक सिगार दबाया हुआ और रह-रहकर वह बड़ी शान से उसका धुआं छोड़ रही है. यह नजारा देखकर हार्टमैन के दिल को बड़ी ठेस पहुंची. वह उठा और उसने धीरे से अपनी खिड़की बंद कर दी. उसने सोचा—एक महिला सिगार पिये, यह कितना शर्मनाक है. साथ ही साथ वह अपने को भी बरी नहीं कर सका—ईश्वर के पवित्र ग्रंथ से उठकर मेरी बदकिस्मत निगाह अनायास ही उस युवती के सफेद-सफेद नंगे गले और आधी खुली छाती पर ही क्यों गयी. उसके मस्तिष्क में इन विचारों ने जो आंधी पैदा कर दी, उनकी बदौलत उसका आज का उपदेश सचमुच बहुत आकर्षक बन गया. चर्च में आये उपासक उसके आज के व्याख्यान से बहुत प्रभावित हुए. उसे यह उम्मीद हो गयी कि मेरे भविष्य के उपदेशों से प्रभावित होकर वह युवती अवश्य ही सिगार पीना छोड़ देगी.

जिस मकान की खिड़की पर नजर पड़ते ही हार्टमैन इतना उद्विग्न हो उठा था, उस मकान में दो स्त्रियां रहती थीं. एलिजाबेथ स्विफ्ट नाम की एक धनी विधवा और उसकी बेटी कुमारी केट स्विफ्ट. बैंक में इनका पर्याप्त रुपया जमा था. फिर भी केट स्विफ्ट एक स्कूल में अध्यापन करती थी. उसकी उम्र तीस बरस की थी. वह एक स्वच्छ और सुंदर युवती थी. केट स्विफ्ट के मित्र बहुत नहीं थे. उसके संबंध में मशहूर था कि वह बातचीत करने में जरा तेज-तर्रार है.

स्त्रियों के संबंध में हार्टमैन का अनुभव बहुत सीमित था. वह इंडिआना के एक व्यवसायी का लड़का था. उसने अपनी शिक्षा का खर्च स्वयं अपनी मेहनत से जुटाया था. कालेज में पढ़ते हुए, वह जिस घर में रहता था, वहीं उसका कुमारी सिर्राह से पहले-पहल परिचय हुआ था. क्रमशः दोनों की मित्रता बढ़ी; यद्यपि इस संबंध के लिए हार्टमैन की अपेक्षा सिर्राह ही अधिक उत्सुक प्रतीत थी. अंत में दोनों का विवाह हो गया. हार्टमैन ने किसी अन्य लड़की से मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया था. विवाह के समय सिर्राह के पिता ने उसके नाम पर पंद्रह हजार डालर बैंक में जमा करवा दिये और अपने वसीयतनामे में उसके नाम पर तीस हजार डालर और भी लिख दिये. इस तरह, इतना धन मिल जाने की बदौलत हार्टमैन ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि इस विवाह में वह सौभाग्यशाली रहा है या नहीं. वह अपने भाग्य से बहुत प्रसन्न था. उसने अपने जीवन का उद्देश्य धर्म प्रचार बना लिया था और स्त्रियों से परिचिति या मित्रता बढ़ाये बिना, वह केवल ईश्वर के कार्य में ही लगे रहने का प्रयत्न किया करता था.

पादरी के अंतस्तल में एक युद्ध उठ खड़ा हुआ. पहले-पहल वह केवल अपना पवित्र उपदेश ही कुमारी स्विफ्ट के कानों में डालना चाहता था, अब उसे देखने की अभिलाषा भी उसके दिल में जाग गयी. अपने बिस्तरे पर पड़ी हुई उस अर्धवस्त्रा सफेद नारी मूर्ति को देखने की इच्छा बार-बार उसके हृदय में पैदा होने लगी.

एक रविवार की प्रातः वह जल्दी जाग गया. रविवार को, उपदेश देने की चिंता सदैव उसे बहुत प्रभात में ही जगा दिया करती थी. उठकर सैर के लिए चला गया. लौटकर आते हुए, राह के किनारे से, वह एक नुकीला पत्थर अपने साथ उठा लाया. यह पत्थर लिये हुए, वह सीधा अपने उसी छोटे से स्वाध्याय-गृह में पहुंचा. उसने खिड़की बंद कर दी और उसके दाहिने किवाड़ के निचले शीशे पर पत्थर की नोक कसकर मारी. शीशा टूट गया; उसके टूटे हुए टुकड़े खन्न-सी आवाज करके नीचे जा गिरे और बंद खिड़की में, पार की ओर देखने लायक करीब आध इंच का एक बेढंगा-सा छेद निकल आया. साथ ही साथ पादरी का दिल भी कांप उठा. कम से कम उसी वक्त वह इस छेद से बाहर को झांक नहीं सका. धड़कते दिल से वह अपने सामने बाइबल खोलकर बैठ गया, पर बाइबल बंद करने के थोड़ी ही देर बाद, खुद-ब-खुद उसकी निगाह इस छेद में से होकर, सीधी कुमारी स्विफ्ट के बिस्तर पर चली गयी. देखा, बिस्तर खाली पड़ा था. स्विफ्ट कहीं बाहर गयी हुई थी.

इसी समय पादरी की आत्मा जागी. स्विफ्ट को अपनी जगह न पाकर उसे इस बात की अपार प्रसन्नता हुई कि इस पाप-कर्म में वह सफल नहीं हो सका. वह स्वाध्याय-गृह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतर आया और अपनी बैठक में जाकर प्रार्थना करने लगा.

आज हार्टमैन उपासकों को उपदेश नहीं दे पाया. उसने प्रयत्न तो किया, मगर उसे सफलता नहीं मिली.

कुमारी स्विफ्ट के ध्यान को अपने दिल से निकाल देने के लिए हार्टमैन अपनी पत्नी से विशेष प्रेम प्रदर्शित करने लगा. एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ टमटम पर, पहाड़ी की तरफ सैर के लिए निकल गया. वहां तालाब के किनारे पैदल घूमते हुए सांझ हो गयी. जब काफी अंधेरा हो गया तो हार्टमैन बड़े प्रेम से अपनी पत्नी की कमर में बांह डालकर टहलने लगा. एक और दिन, प्रातराश के बाद अपनी बैठक में जाते हुए वह अपनी कुर्सी से उठा और घूमकर उसने असावधान दशा में चाय के प्याले समेटती हुई अपनी पत्नी का चुंबन ले लिया. इस पर भी जब कभी कुमारी स्विफ्ट का उसे ध्यान हो ही आता तो वह अपनी आंखें ऊपर उठाकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगा, "प्रभु, मेरी रक्षा करो. मुझे पथभ्रष्ट होने से बचाओ."

एक दिन सांझ के बाद अपने उसी कमरे में जाकर वह स्विफ्ट के घर की खिड़की की तरफ देखने लगा. उसका अनुमान था कि इस समय वहां कोई नहीं होगा, इसलिए उधर देख लेने में हर्ज ही क्या है, मगर उसे दिखाई दिया—कुमारी स्विफ्ट अपने दिन के कपड़े उतारकर एक पारदर्शी पोशाक पहने हुए अपने बिस्तर पर लेटी हुई है और तन्मय होकर कोई किताब पढ़ रही है. बिजली की रोशनी से कमरा प्रकाशित हो रहा है. उसकी सुडौल छाती का ऊपर का भाग, कंधे और गला. . .सभी साफ-साफ दिखाई दे रहे हैं. हार्टमैन उस तरफ से अपनी निगाह न हटा सका. वह नौ बजे से रात के ग्यारह बजे तक अपनी बाइबल खोलकर वहीं बैठा रहा. खिड़की के सूराख में से बार-बार उसकी निगाह स्विफ्ट के सुंदर शरीर की ओर जाती थी. वह कुछ भी पढ़ नहीं सका. ग्यारह बजे कुमारी स्विफ्ट ने अपना लैंप बुझा दिया और सो गयी. हार्टमैन तब वहां से उठ खड़ा हुआ और रात के एक बजे तक बड़े उद्विग्न हृदय से चर्च के पास वाली सुनसान सड़क पर चहलकदमी करता रहा. यह ठीक है कि अभी तक उसके हृदय में कुमारी स्विफ्ट की सुंदरता के लिए स्पष्ट रूप से वासना के भाव नहीं आये थे; मगर फिर भी वह कुछ चाहता था. क्या चाहता था, इसे वह खुद ही नहीं समझ सकता था.

अंत में, सड़क के किनारे के सघन वृक्षों की अंधकारमयी छाया में जाकर वह बोला, 'मैं ईश्वर का पुत्र हूं, वह अपने सेवक की रक्षा अवश्य करेंगे.' वह फिर से टहलने लगा.

इसी तरह चर्च के नजदीक की इन गलियों और सड़कों पर, वह हफ्तों तक रात के समय ईश्वर से प्रार्थना करते हुए घूमता-फिरता रहा.

बरसात आयी और चली गयी. सर्दियों का मौसम पूरे यौवन पर आ पहुंचा. इस बीच में, उसी तरह अपने स्वाध्याय कक्ष में जाकर, निश्चिंततापूर्ण स्वाधीनता के साथ सिर्फ एक दिन वह भी खुला वस्त्र पहने अपने बिस्तर पर लेटी हुई कुमारी स्विफ्ट को, हार्टमैन ने तीन बार निरंतर घंटों तक बैठे रहकर देखा और तीनों बार ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करते हुए वह उसी तरह, बहुत रात बीत जाने तक चर्च के आसपास के गली-कूचों में बेचैनी से घूमता रहा.

क्रमशः इस अधीरता में उसके हृदय की सद्भावनाएं जिद्द के रूप में परिणत हो गयीं. वह आप ही आप कहने लगा—'मैं खिड़की के उस छेद की मरम्मत नहीं करवाऊंगा. अब मैं रोज रात के समय उसी कमरे में जाकर बैठा करूंगा. देखूं अब मेरी आंख उस तरफ को कैसे उठती है. नहीं, मैं हरगिज उधर नहीं देखूंगा. उसे देखने की इच्छा भी नहीं करूंगा. मैं हार कैसे सकता हूं? भगवान ने यह प्रलोभन मेरी परीक्षा के लिए भेजा है, मैं इस परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होऊंगा. इस साधना में अपनी आत्मा के अंधकार का नाश करके प्रकाशवान हो जाऊंगा.'

फिर दिल के घोड़े पूरी तरह बेकाबू हो गये—'मैं स्विफ्ट को चाहता हूं. . . .अगर धर्माचार्य रहकर में उससे प्रेम नहीं कर सकता तो मैं यह मनहूस कार्य ही छोड़ दूंगा. मैं स्विफ्ट को लेकर कहीं भाग जाऊंगा. . . वह कितनी आकर्षक है.'

सहसा हार्टमैन को दिखाई दिया—कुमारी स्विफ्ट अपने कमरे के फर्श पर घुटने टेक कर बैठ गयी है और हाथ जोड़कर पादरी की आंख के सामने की खिड़की पर बनी ईसा की पवित्र मूर्ति को लक्ष्य करके फूट-फूटकर रो रही है. साफ प्रतीत होता था कि वह भगवान से कोई प्रार्थना कर रही है, मगर क्या प्रार्थना कर रही है, यह जान सकना असंभव था. धर्माचार्य हार्टमैन ने यह सब देखा, और उसके हृदय में प्रकाश की बिजली चमक आयी. एक ही क्षण में उसे अपना अधःपतन प्रत्यक्ष दिखायी दे गया. ओह, वह कितना नीच है! भले घरों की सुकुमार लड़कियां भगवान की जिस पवित्र मूर्ति के सामने, बच्चों की तरह फूट-फुटकर अपना दिल खोलती हैं, उसी की ओट में से वह. . . वह इस भगवान के घर का पुरोहित, उन्हें वासनापूर्ण दृष्टि से घूर-घूर कर देखता है!

हार्टमैन ने न सर्दी की परवाह की और न इन ठोकरों की. वह चिल्लाता चला जा रहा था—'पिता, तूने मुझे बचा लिया! आहा! तू कितना दयालु है!. . . तूने मुझे प्रकाश दिखा दिया!. . . इस बार तू मुझे एक सुंदर स्त्री के रूप में मिला.'

प्रातःकाल श्रीमती सिर्राह ने देखा कि उसका पति अपने बिस्तर पर पड़ा कराह रहा है. उसे तेज बुखार चढ़ आया है. □

● रूपांतर : चंद्रगुप्त विद्यालंकार

चलते-चलते

एक सज्जन ने 'कोर्ट-मैरिज' करते हुए अदालत में जज के सामने गीता पर हाथ रखकर शपथ ली—"मैं यह शादी अपनी स्वयं की मर्जी से कर रहा हूं और भविष्य में इससे होने वाले सभी परिणामों के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूंगा." □

—रमेश त्रिपाठी 'राजा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

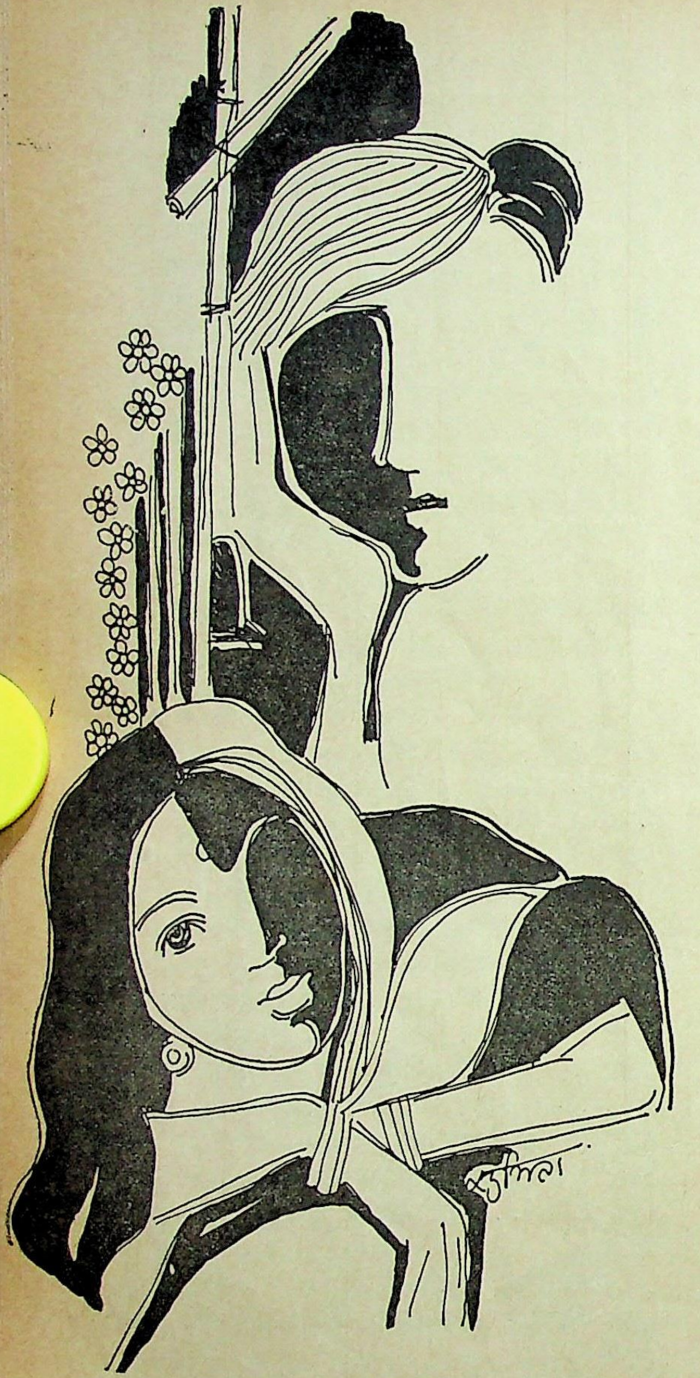

सेठी हजामत बनवाने नाई के गया हुआ था. पत्नी जयश्री ने दरवाजा खोला. जयश्री आज बहुत भिन्न लग रही थी, पहले से बड़ी, समझदार और परिपक्व. पहले से कम सुंदर, कम स्मार्ट. आज उसने साड़ी पहन रखी थी, शायद इसलिए, विनय ने सोचा. पर नहीं आज उसकी आंखों में वह चमक भी नहीं थी जो पहली बार उसे अजाने ही उत्फुल्ल कर गयी थी. विनय जड़-सा बैठा रह गया. यह एक हल्का-सा धक्का था, ना मालूम होते हुए भी मालूम. उसके साथ प्रायः ऐसा होता था कि पहली बार उसे कोई लड़की बेहद सुंदर, सुरुचिपूर्ण और संवेदनशील लगती लेकिन दूसरी बार मिलने पर व्यक्तित्व का वह जादू न जाने कहां गायब हो जाता. दूसरी बार वही लड़की उसे नितांत साधारण नजर आती और उसके प्रति विजय के मन में एक उत्फुल्ल-हीनता समाती जाती. यह एक परिचित प्रक्रिया थी जो उसके जेहन से लेकर, अपने साथ पढ़नेवाली, काम करने-वाली लड़कियों पर भी घटित हो चुकी थी. विनय अपने स्वभाव के इस पक्ष से क्षुब्ध था लेकिन इसका निदान उसके हाथ में नहीं था. पिछली बार उसने अंदाज लगाया था कि सेठी की पत्नी की पढ़ने-लिखने में बेहद रुचि होगी लेकिन आज बातचीत में उसे पता चला कि उसने शार्टहैंड-टाइपिंग का कोर्स कर रखा है और वह एस्पीएंड कंपनी में रिसेप्श-निस्ट है. विनय को लगा वह खामखाह आज चला आया. जयश्री के प्रसाधनहीन चेहरे पर एक निश्चितता थी जो उसके आने से क्रमशः तिरोहित हो रही थी. प्रकट में वह बहुत-सी बातें कर रही थी, कि उसे ढाबों में खाना खाना बड़ा रोमां-टिक लगता है, कि उसका बॉस टाई और रूमाल हमेशा उसकी पसंद का खरीदता है, कि सेठी के माता-पिता अमृतसर चले गये हैं लेकिन विनय को लग रहा था अंदर ही अंदर वह झींक रही थी, 'लो मेहमान आ टपके हैं, अब जलाओ चूल्हा और बनाओ सब्जियां.' उसके चेहरे पर अकस्मात फंस जाने का एहसास था, विनय के लिए और ज्यादा बैठना असंभव हो गया. वह 'अभी आता हूं' कहकर बाहर हो गया. लेकिन मुख्य सड़क से पहले ही उसे सेठी आता दिखाई दे गया. ताजी हजामत के बाद सेठी के चेहरे पर कान ही कान नजर आ रहे थे, और वह दुबला दिखाई दे रहा था. उसने बहुत इसरार से विनय को थामा और वापस ले चला. विनय ने एक गुमटी से आधा दर्जन अंडे और ब्रेड-मक्खन खरीद लिया, बावजूद सेठी के विरोध के. सेठी कहता रह गया कि आज उन लोगों

ग़म रोज़गार के

• ममता कालिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों होता है ऐसा कि आप जिसे अपना सबसे करीबी समझते हैं. . . उसी पर शक करने लगते हैं. एक तरफ आप उसकी स्मृतियों के सहारे जीना चाहते हैं और दूसरी तरफ खुद को एक ऐसे 'सेफ्टी-नट' सा महसूस करने लगते हैं जिसका इस्तेमाल महज इमरजेंसी में हो सकता है. . . बीते हुए दिनों और सुचित्रा की स्मृतियों में डूबते-उतराते विनय की कहानी. . . उपन्यास अंश का शेष भाग. . .

का छोले-भठूरे का प्रोग्राम है. विनय नहीं माना. घर जाकर उसने घोषित किया, जयश्री भाभी को उठने की जरूरत नहीं, वही अंडे की भुजिया और टोस्ट बनायेगा. जयश्री ने एक बार भाभीनुमा विरोध किया, फिर कहना मानकर बैठ गयी.

उन दोनों ने तय किया था कि दफ्तर की बातें नहीं करेंगे पर घूम-फिरकर बात फिर वहीं पहुंच जाती. हारकर उन्होंने हथियार डाल दिए. जमकर दफ्तर-दास्तान कही-सुनी और जयश्री को बोर किया. वह उनकी समस्याएं सुन-सुनकर चकित थी कि महज एक हजार रुपए माह पर वे इतनी जिम्मेदारी उठाते हैं जबकि उसे नौ सौ के साथ कोई ताला-बंदी नहीं है. वह ठीक दस बजे दफ्तर पहुंचती है और ठीक-पांच बजे अपने टाइपराइटर को खोल उढ़ाकर दफ्तर छोड़ देती है. सेठी बोला, "इसमें तुलना का कोई सवाल ही नहीं है. तुमसे भी कम चपरासी की जिम्मेदारी होती होगी."

"नहीं उसे तो सुबह सबसे पहले आना होता है, और जब तक साहब दफ्तर में बैठे रहें उसे वहां बने रहना पड़ता है." जयश्री ने हंसते हुए कहा. विनय अब कुछ अच्छा महसूस कर रहा था. एक तो पेट में भोजन पहुंच गया था दूसरे उसे खुशी थी कि जयश्री छोटी-छोटी बातों पर पति से झगड़ नहीं रही थी जैसे आमतौर पर दोस्तों की पत्नियां करतीं, 'हां-हां मैं तो तुम्हें चपरासी से भी गयी गुजरी नजर आती हूं, तुम तो मुझे भंगिन समझते हो.' जितनी देर वह वहां रहा उसने सुनील और जयश्री के बीच आदर्श संगति पायी जैसे अली अकबर का सरोद और अल्लारक्खा का तबला वादन. सुनील सेठी ने अपने घर में आम घरों की तह न टी. वी. रखा हुआ था न टेपरिकार्डर, न मिक्सी और न टोस्टर. उसका कहना था कि जब बिजली उजाला करने को भी मिलनी दुश्वार है तो ये सब चीजें जुटाकर ढेर लगाना बेहूदगी है. जयश्री का भी कहना था कि ये बाकी लोग उसे बेवकूफ नजर आते हैं जो अपनी सारी आमदनी केवल घर सजाने में लगा डालते हैं, इसके लिए सारा दिन भाग-दौड़, आपाधापी करते हैं, खुद सारे समय बाहर रहते हैं, और उनके नौकर अंदर. दिल्ली में लोग नौकरों के लिए घर सजाते हैं."

"और गाजियाबाद में?" विनय ने हंसते हुए पूछा.

"गाजियाबाद में लोग नौकर नहीं रखते, मल्टीपरपज हजबैंड ही सब काम निकाल देता है, बाजार से सामान लाना, बीवी को सिनेमा दिखाना, आये-गये लोगों से व्यर्थ की बातचीत करना, बच्चों को होमवर्क कराना."

"गाजियाबाद के लोगों को तो और भी कम समय मिलना चाहिए."

"यह समय की नहीं संवेदना की सीमा है, उनमें जीवन के प्रति एक उपनगरीय दृष्टिकोण आ जाता है. सच यार दिल्ली के उपनगरों के जीवन के बारे में एक बेहतरीन धारावाहिक फीचर बन सकता है. बहुत लोकप्रिय होगा."

"लेकिन संपादक माने तब न! वह तो बलात्कार या नियोग पर फीचर छापेगा."

सेठी बोला, "वह माने चाहे न माने, मैं सुझाव जरूर दूंगा, महानगर के उपनागरिक उर्फ ये उपनगर."

फिर प्रोग्राम बन गया था स्टेशन पार तली हुई मछली खाने का. छुट्टी के रोज सेठी का यह प्रिय कार्यक्रम था. जयश्री जल्दी से तैयार हो गयी. विनय चकित रह गया. जयश्री ने मैक्सी पहन ली थी और हल्का मेकअप किया था. वह फिर पहले जैसी लग रही थी, एक चपल; भूरी गिलहरी की तरह. 'भाभी' संबोधन के सर्वथा अनुपयुक्त—पर संबोधन तो बार-बार बदले नहीं जाते. लेकिन विनय को उसका इतनी कैजुअली तैयार होना अच्छा लगा. उसके अपने परिवार की स्त्रियां कहीं भी जाने के लिए जब तैयार होतीं एक शोर-सा मच जाता. पहले बच्चे पीटे जाते, फिर चप्पल सिलवाने कोई मोची के यहां दौड़ाया जाता, थोड़ी बहुत कहा-सुनी होती और अंत में महिलाएं अवतरित होतीं अपने सर्वश्रेष्ठ परिधान में, रेशमपट्टी या गज्जी सिल्क की साड़ी; बेमेल ब्लाउज, ऊंची एड़ी की सैंडिल और पंचमेल मेकअप में. महज आधुनिकता के नहीं, संवेदना के स्तर पर भी उनका प्रसाधन और सजावट विनय को झटका देता. यह बात दिल्ली आकर कुछ ही दिनों में और ज्यादा अच्छी तरह उसे समझ आने लगी थी. घर-घर लोग बिजली के बिना बेचैन, बदहवास पड़े थे. छुट्टी चौपट होने के बाद का जबरदस्त एहसास. जैनरेटर के सहारे धुंधला सिनेमा देखना जिन्हें स्वीकार नहीं था वे कमरों, बरामदों में घूमघामकर बार-बार घड़ी देखते छह बजने का इंतजार कर रहे थे.

विनय घर पर तो शाकाहारी था लेकिन दिल्ली आकर यकायक मांसाहारी बन गया था. उसने पाया उसके पास विकल्प भी नहीं था. नाश्ते में आमलेट के अलावा और सब चीज महंगी पड़ती. खाना भी शुरू में वह ऐसे होटल में खाता रहा जहां सामिष और निरामिष खाना साथ ही रखा रहता था. बाद में सस्ते के ख्याल से उसने वैष्णव भोजनालय में माहवारी बिल पर खाना खाने का प्रबंध किया था.

मछली मार्केट सुनसान पड़ा था, सफाचट. सारी तरफ अच्छी तरह घूम-घूमकर देख लिया, कहीं कोई ठेला नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

शबनम गोरखपुरी

जंगल-जंगल हम सुनते हैं सन्नाटों के साज बहुत,
पेड़ के सूखे पत्ते लेकिन देते हैं अवाज बहुत.

वक्त की गहरी तारीकी में जेहन के उजले पर्दों पर,
हमने बदलती तस्वीरों के देख हैं अंदाज बहुत.

अपने शिकस्ता कमरे की वो हंसती हुई तस्वीर हूं मैं,
जिसके हर अंजामे वफा पर रोया है आगाज बहुत.

दर्द की लाम हदूद फिजा में जख्मों का एहसास लिये,
सुनते हैं शाहीने गजल की होती है परवाज बहुत.

गम के लमहे, सोती किस्मत, जागती आंख, सुनते कान,
तनहाई में रूप बदलकर हमको मिले हमराज बहुत.

गर्म हवाओं के झोंकों से बच न सके वो भी 'शबनम'
हंसते हुए जिन फूलों पर था शादाबी का नाज बहुत.

खड़ा था. तुर्रेवाली टोपी पहने एक आदमी एक जगह बड़ी-सी टोकरी से निकालकर अंडे गिन रहा था. उसी से सुनील ने पूछा, "क्यों बड़े मियां, आज मछली नहीं मिलेगी?" उसने गर्दन हिला दी. वह शायद अंडों की गिनती कर रहा था.

"क्यों आज क्या है?" जब जयश्री ने कहा तो उस आदमी ने कौतुक से सिर उठाया. एक मुट्ठी में पांच अंडे थामे-थामे बोला, "बिटिया आज मंगलवार है, साथ शिवरात्रि, आप लोगों का बड़ा त्योहार. आज के दिन मीट-मार्केट, मछली-मार्केट दोनों बंद रहते हैं."

जयश्री काफी शर्मिंदा हो गयी, संकोच से जड़ कि उसे यह याद ही नहीं था. उसे पश्चाताप-सा होने लगा कि वह जरा भी धार्मिक नहीं है.

लेकिन सुनील अपने अक्खड़ अंदाज में बोला, "देखना विनय, आज यहां सन्नाटा है न, कल दुगुनी भीड़ होगी, दुगनी बिक्री होगी."

अंडेवाले आदमी ने सिर हिलाया, "सो तो है, बुधवार को हमेशा ज्यादा बिक्री होती है."

जयश्री बोली, "हम लोग तो कुछ विचार भी नहीं मानते, कभी-कभी मुझे डर-सा लगता है. कुछ तो मानना चाहिए."

सुनील ने कहा, "अगर तुम ये सारे सोम-मंगल मानने की ठान लो तो घर में तुम्हें चूल्हा जलाने की नौबत ही नहीं आयेगी. धर्म, व्रत, उपवास का शेड्यूल एक औसत औरत के लिए इतना टाइट बना हुआ है कि वह साल भर में मुश्किल से एक-दो दिन भरपेट खा सकती है."

दिल्ली पहुंचकर विनय ने पाया कोई भी स्कूटरवाला संतनगर जाने को तैयार नहीं था. सबने मना कर दिया. उसने सोचा बाहर निकलकर बस पकड़ ले. बस स्टॉप पर बस नहीं थी, स्टॉप ही स्टॉप था. यों तो छुट्टी का दिन था पर सड़क पर बेतहाशा भागदौड़ थी. लोगों को न जाने कहां जाना था. लगता था सारा शहर घरों से निकला हुआ है. विनय को लगा जैसे ये सारे भागते-दौड़ते लोग रिले रेस के प्रतियोगी हैं. अभी ये जिनके घर पहुंचेंगे, वे भी दौड़ पड़ेंगे. सारी दिल्ली दौड़ रही थी.

सुचित्रा के पत्र का उसने अभी जवाब नहीं दिया था. पत्र का कुछ दिन जवाब न देने का भी अपना आनंद था. पत्र का जब तक जवाब न दो वह मन में लगातार फड़फड़ाता रहता है जिंदा पक्षी-सा. जवाब पेपरवेट का काम करता है. लैटरबक्स में पत्र छोड़ते ही यह फड़फड़ाहट शांत हो जाती. विनय चाहता था कुछ यादें उसके मन में फड़फड़ाती रहें, जीवन का जिंदा अहसास. यह सोचना अच्छा लगता कि कहीं किसी को उसके पत्र की प्रतीक्षा है.

कई बार उसे शक होता क्या सुचित्रा ईमानदारी से उसका इंतजार कर रही होगी. वह अभी उस एक्स डिटी को भूल नहीं पाया था. उसे लगता जो लड़की इंग्लैंड में ब्याही जाने की संभावना में उसे त्याग सकती थी वह बंबई में ब्याही जाने की संभावना में भी उसे त्याग सकती है, बात सिर्फ मौके की है. कई बार उसे सोचते-सोचते हंसी छूट जाती. सुचित्रा ने उसे एक अतिरिक्त सेफ्टी नट की तरह अपने दिल के टूलबक्स में डाल रखा है, उसकी जरूरत अब केवल इमरजेंसी में पड़ेगी. उसे याद आता कैसे सुचित्रा लखनऊ चली गयी थी, बाल कटाने कि बाल कटाकर फोटो अच्छी आयेगी. सिनेलाइट स्टूडियों में उसने केबिनेट साइज फोटो खिंचवायी थी, बालों की कुछ लटें आगे छितरा, मां की भारी साड़ी और दीदी की सैंडिल पहनकर. उस दिन न जाने किस तरीके से उसने अपने वक्ष को अतरिक्त उभार दे दिया था और जब फोटो धुलकर आयी थी तो वह अपना अक्स देख एक बार को खुद हक्का-बक्का हो गयी थी. फोटोग्राफर ने फोटो न जाने किस कोण से खींची थी कि वह सुचिता नहीं लग रही थी. फोटोग्राफर ने काफी मेहनत से टच, री-टच कर उसे और भी गदराया हुआ बना दिया था, कुछ इस तरह कि वह दक्षिण भारतीय फिल्मों की बलिष्ठ नर्तकी लग रही थी. चालीस रुपये चुकाकर वह फोटो ले आयी थी पर परिवार की राय से वह फोटो भेजी नहीं गयी थी. शादी के लिए भेजी जानेवाली तस्वीरों का परिवार के मन में एक बंधा-बंधाया चौखटा था और वह तस्वीर उस चौखटे में नहीं घुसती थी. छीन-झपटकर विनय ने भी वह तस्वीर देखी थी और देर तक उसे बेकाबू हंसी आती रही. अगले दिन सुचित्रा को उसकी दीदी ग्लैमर स्टूडियो ले गयी थीं, फिर से फोटो खिंचवाने. इस बार उसने झीनी साड़ी पहनी व बाल पीछे बांध लिये. दीदी ने प्लास्टिक का फूलदान और शेर की खालवाला कालीन भी विशेष रूप से बिछवाया. दीदी की फोटो इसी तरह इसी स्टूडियो में खिंचवायी गयी थी और पसंद कर ली गयी थी. दीदी अब सफलतापूर्वक विवाहित थीं. इस बार का परिणाम पहले से बेहतर रहा. सुचित्रा सुडौल लग रही थी और सलोनी. आंखों में हल्की लज्जा और काजल, माथे पर केवल एक ललित लट और बिंदी, होठों पर हल्की लिपस्टिक व स्मित. यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाहेच्छुक लड़कियों की आदर्श भंगिमा थी. फोटो भेज दी जाती लेकिन उसकी पड़ोसिन श्रीनिवासन आंटी ने कह दिया, "अरे सुचिता, यह शेर की खाल बिछी देखकर लड़का कहेगा यह शेर तो तुम्हीं ने मारा है, बड़ी शिकारी लग रही हो!" सुचिता की मां ने यह फोटो भी रद्द कर दी. उनके अनुसार श्रीनिवासन आंटी ने टोक दिया, टोका हुआ काम हमेशा बिगड़ता है. पिता दुखी हो गये, लड़का शक्ल देखेगा या कालीन, फिजूल के वहम हैं तुम्हारे. यही फोटो भेज दो. सौ रुपये फोटो ही फोटो में फुंक गये.

लेकिन मां नहीं मानी थी. एक बार फिर विधिवत् फोटो खिंचवायी गयी थी, इस बार सिविल लाइंस से टंडन फोटोग्राफर को घर पर बुलवाकर. यह फोटो सबसे अच्छी आयी थी, असल मॉडल से अधिक. एक तो सुचित्रा घर में थी इसलिए चेहरे पर का तनाव नदारद था. दूसरे उसने अटपटे ढंग से साड़ी पहनने की अपेक्षा सलवार कमीज पहनी हुई थी. बस इसमें इतनी अड़चन थी कि सुचिता की लंबाई कुछ कम लग रही थी. फिर भी कुल मिलाकर वह हल्की-फुल्की और आकर्षक लग रही थी. भगवान का नाम लेकर फोटो भेज दी गयी.

उम्मीद और उमंग की पींगें भरती हुई सुचित्रा ने उल्लास में विनय को बहुत पीछे छोड़ दिया था. यों तो विनय ने तब उसके यहां जाना काफी कम कर दिया था पर दूसरे-तीसरे दिन मानु को लेकर सुचित्रा खुद ही उसके यहां पहुंच जाती सिर्फ यह पूछने कि डाकिया आज आया था या नहीं. इंग्लैंड से अपने भावी मंगेतर की चिट्ठी का चाव भरा इंतजार करते हुए उसने एक भी बार विनय की आंखों में आये घायल अक्स पढ़ने की कोशिश नहीं की. मुहल्ला एक होने के कारण सुचिता को शायद यह संदेह भी था कि विनय डाकिए से मिलकर उसकी चिट्ठी कहीं गायब न कर दे. चिट्ठी का जवाब आने से काफी पहले ही विनय इतना आहत व अपमानित हो गया था कि उसे लगा उसने एक बहुत निर्मम लड़की से खामखाह अपने को जोड़कर अपनी उम्र के बेहतरीन लमहे तमाम कर लिये. उसने कितना-कितना समझाया था सुचित्रा को कि उन दोनों ने जो सपने साथ-साथ देखे हैं वे वास्तविक व मोहक हैं. उनकी पहुंच के भीतर, उनकी सामर्थ्य के अंदर. लेकिन उसकी आंखों पर विदेश का मायाजाल कुछ इस तरह चढ़ा कि उसे कुछ न दिखा. लड़कपन से अब तक चलता आया प्यार, विनय का विवेक, विश्वास, विरोध कुछ नहीं, बस विदेश में ब्याही जाना ही उसके अस्तित्व का सवाल बन बैठा. इंतजार के उस अंतराल में सुचित्रा के बड़े भाई अमरेंद्र, जो विनय का अच्छा दोस्त था, ने उसे समझाया भी, "सुचित्रा सोच समझकर हां करना कहीं ऐसा न हो कि तुझे इंग्लैंड जाकर पता चले कि जिसे तू इंजीनियर समझी है वह मामूली मिस्त्री है. क्या पता कैसे चरित्र का आदमी है. यह ठीक है कि उसका परिवार हिंदुस्तान में है लेकिन लड़का तो पंद्रह साल से बाहर है. कई बार लड़के वहां मेम रख लेते हैं और हिंदुस्तानी बीवी केवल तश्तरियां धुलवाने के लिए ले जाते हैं." पर सुचित्रा की खुमारी को कोई न तोड़ सका. वह टूटी, दो माह बाद

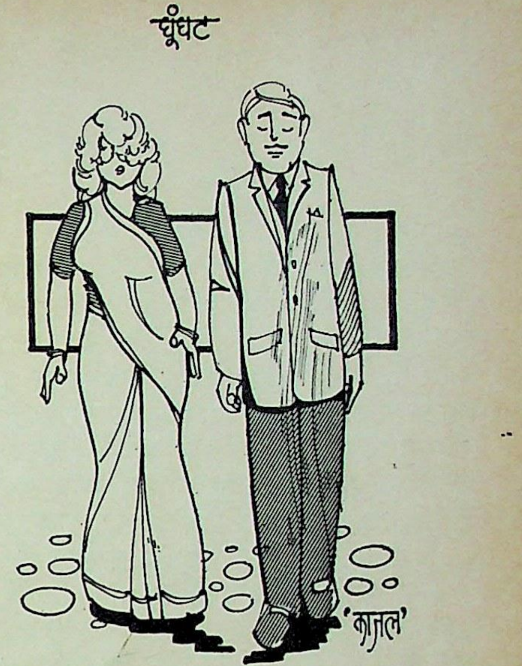

● व्यंग्य चित्र : काजल

इंग्लैंड से चिट्ठी आने पर ही. लड़के ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था, 'पत्र का जवाब देने में देर हो गयी है क्योंकि मैंने अपने परिवार से सभी लड़कियों के जरूरी विवरण मंगाये थे. उनके तुलनात्मक अध्ययन से मैंने पाया है कि सुचित्रा का कद बहुत छोटा और फिर कुछ अविकसित है. फोटो मैं वापस भेज रहा हूं.' उस लड़के ने चंद सतरों में अपनी शिष्टता व अशिष्टता दोनों का परिचय दे डाला था. अस्वीकृत फोटो अपने कमरे में पटक, बिस्तर पर गिर उस दिन सुचित्रा, हिलकियों से इतना रोयी थी कि किसी का उसे चुप कराने का हौसला नहीं हुआ. तीन दिन, तीन रात वह न कमरे से निकली न घर से. यहां तक कि कस्बे के फालतू लोग अफसोस प्रकट करने लगे कि कहीं वह बीमार न पड़ जाये या उसकी आंखें न खराब हो जायें. किंतु वह न बीमार पड़ी न उसकी आंखें ही खराब हुईं वह यकायक संभली और मां से उलझ पड़ी, "क्यों भेजी थी मेरी थर्ड रेट फोटो! क्या लखनऊ जाकर नहीं खिंचवा सकते थे, क्या कानपुर नहीं ले जा सकते थे? तुमने मेरी जिंदगी बरबाद कर दी, मेरी किस्मत में यह इलाहाबाद की नालियां ही लिखी हैं." बेटी की मुंहफट मायूसी से मां मार्माहत हुई थी.

सुचित्रा ने बड़ी तत्परता से अपने सर्टीफिकेट, मार्कशीट, डिग्री वगैरह सहेजकर एम. ए. हिंदी में दाखिला ले लिया. उसने घर में मुनादी करदी, "मुझे कोई परेशान न करे, मैं अभी न शादी करूंगी न सगाई, पढ़ लिखकर प्रोफेसर बनूंगी."

पिता दुलार से हंस दिये. घर भर कुछ कुछ निश्चित हो गया. वे अब फुर्सत से लड़का ढूंढने का कार्य कर सकते थे.

सुचित्रा के परिवार में विनय इस तरह शामिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिक

▣ जगदीश कश्यप

खेत में फसल का पहला पानी देने के बाद वह रजवाहे की मुंडेर पर बैठा दूर डूबते हुए सूरज को देख रहा था. सूरज डूबते वक्त इतना ठंडा क्यों हो जाता है. धूप में कोई असर ही नहीं. आखिर इसे भी तो आराम चाहिए. उसने देखा, किसान पिता फावड़े से खेत की नालियां फिर सही करने लगा था. कौन विश्वास करेगा कि पिता-पुत्र एक साथ खेत में काम करते हैं, पर बोलते नहीं एक-दूसरे से. मैकू का किसान बाप अपने बेटे से खूब गप्पें हांकता है. हुक्का सुलगाने से पहले वह दो-चार गुड़गुड़ी मार लेता है या बीड़ी सुलगाने से पहले सुट्टा मार लेता है. पिता-पुत्र दोनों गंवारू गीत गाते हुए काम करते हैं. मैकू एक मील दूर कस्बे के इंटर कालेज में जाता है पढ़ने. नाइंथ में है.

अब वह पीपल के पेड़ के पास आ गया था. वहीं बचपन में सब बच्चे पेड़ पर चढ़ते थे और कोटरों में से तोते के बच्चे निकालकर ले जाते थे. आंख-मिचौनी! सड़ी दोपहरी में मचान पर सो जाना या सावन में झूलती हुई गांव की लड़कियों को छेड़ना कितना भला लगता था. उसका कसूर इतना ही तो है कि वह शहर में पढ़ आया है और बेरोजगार होकर बाप के संग खेत में आ गया है तो इसमें बुराई क्या है. . .अपना काम करने में क्या बुराई है. . .पर न जाने क्यों बाप उसे नौकरी पर ही देखना चाहता है. चाहे तीन-चार सौ रुपये महीना ही मिले, जबकि खेती की आधुनिक तकनीक प्रयोग करके वह ज्यादा फसलें और अनाज ले रहा है. . .

गांव के लड़के-लड़कियां उससे न जाने क्यों खौफ खाते हैं! वह डबल एम. ए. है तो क्या हुआ? क्या वह खेती के अयोग्य हो गया? न जाने क्यों सब उसे सहमी निगाहों से देखते है या फिर हिकारत से. पीपल बाबा, मैंने गांव में आकर कौन-सा अपराध कर दिया है. मैं तो इसी गांव का हूं. यहीं पला-बड़ा हुआ हूं! और उसके गालों पर आंसू ढुलक आये.

पीपल बाबा शांत खड़े हैं. विशाल पीपल पर पंछियों का शोर हो रहा है. गोधूलि का समय है. गाय-भैंसें जंगलों से लौट रही हैं.

उसने जल्दी से आंसू पोंछ डाले, कहीं कोई देख न ले. □

● डी-32, गली सिटी पोस्ट आफिस, गाजियाबाद

स्वीकृत था जिस तह आस-पड़ोस के घरों के फालतू पशु-पक्षी स्वीकृत होते हैं. उसके प्रति सबका एक सहज शीतल दृष्टिकोण था. प्रतिदिन देखते-देखते उन्हें अब वह एक निरापद दोपाया लगने लगा था जिससे बातें करने में उनकी बेटी पर कोई विकट संकट आने का प्रश्न नहीं उठता था. जैसे पड़ोस का जाना-पहचाना बिल्ला मौका पाकर रसोई से दूध पी जाये तो उसे लाड़ में हल्का-सा झिड़ककर माफ कर दिया जाता है वैसे ही विनय के साथ किया जाता था. सुचित्रा को उसके साथ उठने-बैठने घूमने, ताश खेलने और यदा-कदा सिनेमा देखने तक की खुली छूट थी. सुचित्रा के माता-पिता चौकसी के लिहाज से छोटे भानु और राका को साथ कर देते और बेफिक्र हो जाते. भानु और राका की रग-रग विनय पहचानता था. वह उन्हें चाकलेट दिला देता और उनकी ओर से बेफिक्र हो जाता. सुचित्रा विनय की रग-रग पहचानती थी, वह उसे अपने अकेलेपन , असहायता और अनाड़ीपन के प्रति आश्वस्त करती और बेफिक्र हो जाती. विनय उन लड़कों में से था जो लड़कियों से बात करना एक अहम् जिम्मेदारी के रूप में लेते थे. अपने शहर में उसके इने-गिने परिचय थे और गिने-चुने संपर्क. वह इनका महत्व अच्छी तरह जानता था. सुचित्रा ने इंग्लैंड रिश्ता तय हो जाने की उम्मीद में उसे जो छह सौ चालीस वोल्ट का धक्का दिया उससे कुछ हद तक उसे उसके नियुक्ति पत्र ने ही उबारा अन्यथा वह भी निराशा में या तो आत्महत्या की सोचता या आत्मदया की. नियुक्ति-पत्र ने तो उसे इतना भी समय नहीं दिया कि वह सुचित्रा से यह कह पाता कि वह कितनी मौकापरस्त लड़की है. बावजूद सुचित्रा की उन्मुखता के, विनय का मन इस संपर्क की तरफ से ठंडाता जा रहा था. उसे बराबर लगता कि यह मात्र दैनिक क्रम है अथवा अभ्यास जिसके अंतर्गत वह प्रतिदिन सुचित्रा से मिल लेता है. और इसीलिए उसे दिल्ली चले आना अच्छा भी लगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 15 अगस्त, 1984 तक इस पते पर भेज दें— **संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है : 361) 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश: 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

छाया : सुनील सक्सेना, 11 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

तस्वीर बोलती है

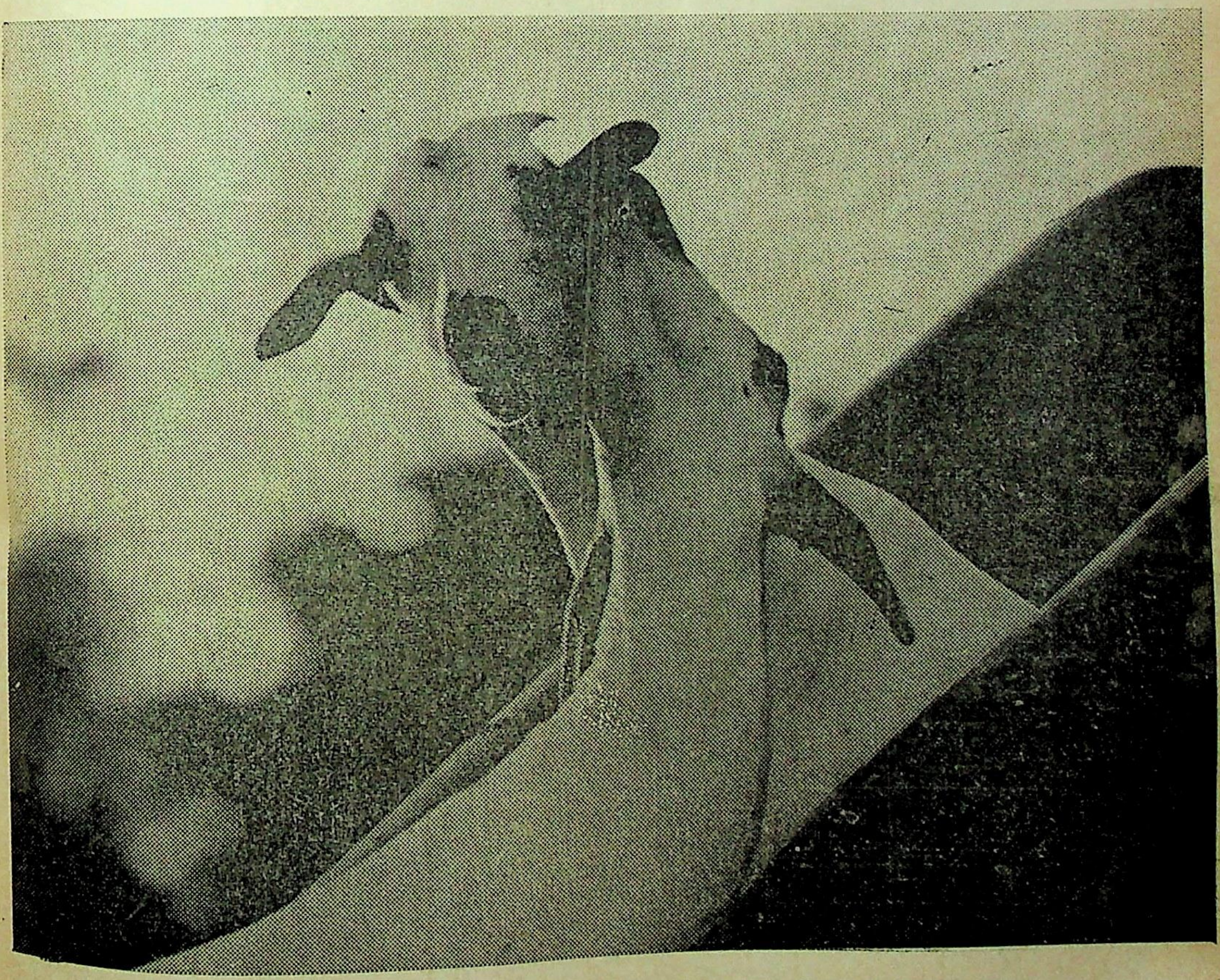

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती कहानी

आक्रोश

▣ गुणवंती त्रिवेदी

क्या पैसा सचमुच इतनी बड़ी चीज है कि मरते हुए इंसान को बचा सके! . . . बेटे की मौत पर भावुक आक्रोश व्यक्त करने वाली मां की करुण-कथा...

सरकारी अस्पताल के बाहर के चौगान में देहात से आये मरीज उसी तरह भनभना रहे थे, जिस तरह मच्छरों की जिद्दी टोलियां भनभनाया करती हैं. उनके बीच बैठी राधा गोदी के नन्हें-मुन्ने को बासी और सड़े हुए बिस्कुट देती हुई थपकती और खिलाती हुई कह रही थी, "बेटे, तू यहां जरूर ठीक हो जायेगा. यह तो बड़ा अस्पताल है. यहां के डाक्टर भी बड़े हैं."

खेत गिरवी रखकर राधा ने ब्याज पर रुपये उठाये थे. मुन्ने की जान बचाने के लिए वह बड़ी मुश्किलों से लंबे फासले तय करके यहां पहुंची थी. कई घंटों की ऊब-भरी प्रतीक्षा के बाद बड़े डॉक्टर साहब अपने चैंबर में आये.

गालियां और धक्के खाती राधा ने अपने लाल को कांपते हाथों से बड़े डॉक्टर साहब के सामने रख दिया. हाथ जोड़ती राधा ने आठ-आठ आंसू रोना शुरू कर दिया.

बड़े डॉक्टर साहब ने कोई सौ रुपयों की दवाओं की परची बनाकर राधा के हाथ में रखते हुए कहा, "एडमिट चाइल्ड."

राधा कुछ समझी नहीं. थरथराते हाथों से उसने परची उठा ली. मुन्ने को शांत रखने के लिए वह कोने में बैठकर उसे दूध पिलाने लगी. राधा का दिमाग काम नहीं कर रहा था. मुन्ने को गोद में उठाकर जब वह उसे भरती करने चली, तब मार्गदर्शन पाने के लिए किसी लावारिस पशु की तरह अपमानित होती हुई भटकने लगी.

इंटर्नशिप कर रही मैं, सहसा, राधा के आमने-सामने आ गयी. थरथराते स्वर में वह मुझसे बोली, "मुन्ने का इलाज कराने के लिए चार दिनों से गांव से आयी बैठी हूं. जमाना ऐसा है कि जान-पहचान के बिना कोई काम होता नहीं. हमारे गांव में एक जन-सेवक जी हैं. उनको अगर पचास रुपये दो तो बड़े अस्पताल में दाखिला दिला देते हैं. पचास रुपये और भी दो, तो बड़े डॉक्टर साहब से सिफारिश भी करवा देते हैं. मैं जन-सेवक जी को साथ लेकर ही आती, लेकिन वह गांव से बाहर कहीं गये हुए हैं." कहते-कहते उस की उंगलियों में सौ का एक नोट आकर कांप उठा. नोट उसने मेरी ओर बढ़ा दिया. मैंने नोट लौटाते हुए कहा, "इसकी जरूरत नहीं है."

मैंने उसके बच्चे को वार्ड में दाखिल करा दिया. इस ओर से भी सावधानी बरती की विद्यार्थियों को सिखाने-समझाने के प्रयोग कहीं उसी गरीब बच्चे पर केंद्रित न हो जायें. बड़े अस्पतालों में गरीब मरीजों को बलि का बकरा बनाया जाता ही है. मैं बड़े डॉक्टर साहब से विशेष रूप से मिली. उन्होंने भी ध्यान रखने का वचन दिया. किंतु बड़े डॉक्टर साहब भी मुन्ने को बचा न सके. मुन्ने की लाश हाथ में लेती राधा का चेहरा अंगार की तरह तपा हुआ था. उसे सांत्वना देने के लिए मैं कुछ कह सकती, उससे पहले ही राधा ने अत्यंत आक्रोश के साथ मुझे घूरा और आंसुओं से भीगे, थरथराते स्वर में कहा, "सौ का नोट बड़े डॉक्टर के हाथ में धरा होता तो आज मेरे लाल की जान न जाती." □

● अनुवाद : मनहर चौहान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और अहिल्या

भगवतीशरण मिश्र

वह बालकनी पर निकल आयी है. अंदर की उमस और फर्श से लेकर छत तक अटी-पसरी उस असह्य अनुभूति से त्राण का यही एक सरल उपाय था. अंदर को झेलना जब भी मुश्किल हो जाता, वह बाहर खिसक आती. गत एक सप्ताह से यह चल रहा था पर आज की बात कुछ और थी. आज सब कुछ समाप्त होने को आ गया था!

बाहर, बहुत नहीं तो थोड़ा सकून अवश्य था. ऐसे, अपने भीतर ही इतना कुछ अव्यवस्थित और बेमानी हो आया था कि बाहर की सहलाती-दुलारती-सी बयार अंदर को व्यवस्थित करने में बहुत सफल नहीं हो पा रही थी.

बालकनी के ठीक नीचे फैला था गंगा का फेनिल संसार. सावन के चढ़ते दिनों ही जाह्नवी अपनी असह्य आंखों से उमड़ आती है. पता नहीं, दर्द का कौन-सा सैलाब उमड़ता है इस सागर-स्वयंवरा के अंतर-प्रवाह में कि कूल-किनारे का सब-कुछ उब-चूभ हो उठता है और दूर-दूर तक मटियाले-गंदले जल-विस्तार के सिवा कुछ नहीं बचता.

उड़ती दृष्टि से सामने का सब कुछ बांधने का प्रयास करती शालिनी के मन में एक बात बार-बार आयी है. . .गत एक सप्ताह में जितना कुछ उमड़ा-पसीजा है उसके अंदर, क्या उसके पासंग में भी है यह सब? शून्यताभरी बाहरी आंखों से नहीं, भरी-भरी-सी भीतरी आंखों से जितना कुछ रिसा-बहा है विगत दिनों, वह क्या इस उमड़ी स्रोतस्विनी के अश्रु-ज्वार से सचमुच बहुत कम है?

कुछ बांधता है बाहर, जो अंदर लौटने की विवशता को थोड़ी देर के लिए थाम लेता है. गंगा का चिर-परिचित कल-कल स्वर, जो कभी तुहीन और उसके बीच अंकुरती रागात्मकता में जादुई संगीत भरता था, आज भले ही सागर-गर्जन का पर्याय बन आया हो, पर ज्वार-जगे सलिल-विस्तार पर सौ-सौ जानों से बिछ आयी चांदनी और संपूर्ण परिवेश के सार-तत्व को समेटती-सहेजती-सी असल-बयार न सही;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही समाज जो उसके जीवन-नाटक का सूत्रधार बना था, आज नाटक की समाप्ति के पहले ही यवनिका खींच रहा है. अब वह कौन-सा मुंह दिखाएगी उसे. अब तो तुहीन भी नहीं रहेगा यह सिद्ध करने के लिए कि जिसे अहिल्या के रूप में अभिशप्त होने को बाध्य होना पड़ा रहा है. . . वह सचमुच किसी सीता से कम नहीं. . .

मन-तन में एक अनाम पुलक भरने का प्रयास अवश्य कर रही है. भीतर पड़ा था तुहीन. पटना-मैडिकल-कॉलेज की रोग-शैया नहीं, मृत्यु शैया पर.

भीतर से बाहर अर्थात वार्ड से बालकनी तक की यह छोटी यात्रा बीते वर्षों की एक ऐसी लंबी यात्रा के लिए बाध्य करती है, जिसका आरंभ जितना सहज था, अंत उतना ही भयावह और सर्वघाती.

तुहीन को इसी गंगा-घाट की सीढ़ियों पर ऐसी ही उजली रातों में पाया था उसने और आज एक सफेद रात में इस अस्पताली घाट के किनारे खोने जा रही है वह. बहुत कुछ हिलोरें ले रहा है स्मृति-पटल पर, गंगा के वक्ष पर उठती-गिरती इन बेशुमार लहरों की तरह ही, किंतु अब इस सब को संजोने-संवारने का कोई अर्थ शेष नहीं बचा है उसके लिए. वह जो सूखे कपड़े से छनकर पानी की तरह बह-निकल जाना चाहता है, उसे कब तक बांधे रख सकती है वह अपने तार-तार होते आ रहे आंचल में?

कॉलेज के दिन थे वे. तुहीन यूनिवर्सिटी का सबसे मेधावी छात्र था तो वह सुंदरता-शालीनता की जीती-जागती तस्वीर—छात्रों की शब्दावली में एक और 'वीनस'.

सौंदर्य और मेधा के संगम पर जन्मे आकर्षण के उस बिरवे को सींचने को उपलब्ध थी, होस्टल की सीढ़ियों से सटकर बहती यही अनंत-सलिला और इसके अनगिनत अवदान-उपादान—रूपहली रातों का नौका-संचरण, शांत लहरों का सलिल-संगीत, तीर-किनारे के गाये-अनगाये गीत, एकाकी संध्याओं के भोगे-अनभोगे भाव. . . और अब यह हो रहा है पटाक्षेप, एक सुखमय जीवन के दुखांत नाटक का.

"ब्रेन हैमरेज का केस है. कोई इंटरनल शॉक. . . यदि आप इसका राज बता सकें तो शायद. . ."

शायद-वायद कुछ नहीं. झल्लायी थी अंदर ही अंदर वह, डॉक्टर विश्वास की बात पर. कारण कैसे बताये वह और किसको? डॉक्टर को? इस समाज को? किसको? कारण जिसे बताना था, वह तो सुनने-समझने की सारी स्थितियों से परे चला गया है. लाख कहें डॉक्टर विश्वास, पर क्या उसको पता नहीं कि इस 'मेसिव हैमरेज' के बाद अब कुछ आशा नहीं रह गयी बुझते दीप की लौ वापसी की? सवेरे कह रहा था रेजिडेंट सर्जन कि "ब्रेन के सारे सेल 'डिजनरेट' कर रहे हैं." अब झूठी सांत्वना की बैसाखी क्यों पकड़ाना चाहते हैं डॉक्टर विश्वास?'

कैसे रेंग आता है संदेह का कीट संबंधों के सजे गुलदस्ते में? क्या है ऐसा जो धराशायी कर देता है, पहचान और विश्वास के ईंट-ईंट चुने, आसमान छूते महल को एक ही झटके में? क्यों बिखर जाते हैं नीड़ के तिनके, अनजान आंधियों के इशारे पर. . .विवश-से, टूटे और निरुपाय से?

सब कुछ याद आ रहा है शालिनी को.

शादी के चार सुनहले साल पंख लगाकर ही उड़ गये थे. तुहीन अपनी यूनिवर्सिटी में पूरी तरह व्यवस्थित हो गया था. डी. लिट. कर चुका था. इस बीच उसने भी अपनी पी-एच. डी. पूरी कर ली थी. बात एक दिन तुहीन ने ही चलायी थी, "घर बैठे-बैठे बोर हो जाती होगी, तुम चाहो तो बी. सी. से कहकर तुम्हारे लिए अपनी यूनिवर्सिटी में ही कोई जगह. . ."

"ना बाबा ना, मैं जो हूं अच्छी हूं. नहीं काटता घर मुझे अकेले में. तुम्हारी प्रतीक्षा में समय बहुत आसानी से निकल जाता है." पता नहीं किस पूर्वाभास के कारण घबरा ही आयी थी वह नौकरी के नाम पर. ऐसे भी चार साल के वैवाहिक जीवन में कभी तो ऐसा नहीं लगा था कि तुहीन के अलावा जीने का कोई बहाना भी चाहिए उसे. उसके उठते-बैठते के सपनों में वही तो छाया रहता. ऊपर से इधर अक्षत भी आ गया था. दो वर्ष लग रहे थे उसके. ठीक है कि उसे अब अधिक देख-माल की आवश्यकता नहीं थी, पर ऐसी कोई विवशता भी नहीं दीख रही थी शालिनी को, घर-आंगन की जिंदगी को तिलांजलि दे 'वर्किंग-वूमैन' का जामा पहनने के लिए. जो कुछ तुहीन को मिल रहा था, वह दो-ढाई आदमियों की आवश्यकता से काफी अधिक था

वह तो आयी थी अपने क्षण-क्षण, पल-पल को न्यौछावर करने तुहीन पर. कॉलेज के किशोर-दिनों में जो कुछ देना-सौंपना शेष रह गया था, उसे ब्याज-दर-ब्याज चुकाने. शर्म और संकोच के अवगुंठन के कारण हृदय-कुसुम की जो पंखुड़ियां खुलने से रह गयी थीं, उन्हें पूरी तरह खोलने-खिलाने. उसकी सांस-सांस अर्पित थी उसके लिए. उसके सोते-जागते के सपनों का नायक था वह, पहले भी, आज भी. कब इच्छा रही थी उसकी पैसा कमानेवाली मशीन बनने की, विशेषकर तब, जब भगवान का दिया सब कुछ था?

हुआ वही, जो तुहीन चाहता था. नौकरी मिल गयी थी उसे तुहीन के ही विभाग में. इस जिंदगी से भी समझौता कर लिया था उसने. ऐसे तुहीन दिन-दिन भर किसी सेमिनार तो किसी मीटिंग में भागता-फिरता और वह डिपार्टमेंट में अकेली बैठी बोर होती रहती. पर कभी-कभार की मिल गयी एक झलक ही पूरे दिन को पुलक से भरने के लिए काफी थी. फिर ऊपर से साथ-साथ आने-जाने का सुख. . . यह बात थी कि शाम की आतुर प्रतीक्षा और सुबह की 'टा-टा' और बार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार पलटती दृष्टि की आश्वासनभरी पुलक अब भूत की बातें हो गयीं थीं, पर जितना था, उतने से संतोष करना सीख ही रही थी वह कि बाकी कुछ भी छीन लिया था तुहीन ने उससे.

"गौरव को जानती हो तुम?"

"क्यों?" चिहुंकी थी वह.

"मेरा एक प्रस्ताव था." कुछ सोचते हुए ही बोला था वह.

"क्या?" उसकी आंखों में सीधे देखती हुई बोली थी. क्यों वह 'सस्पेंस' पर 'सस्पेंस' डाले जा रहा है? जो कुछ कहना है, कह क्यों नहीं देता शीघ्र?

"गौरव का मेरे 'अंडर' रिसर्च करने का विचार है. मुझे तो गोष्ठियों-बैठकों से ही फुर्सत नहीं मिलती. तुम उसे थोड़ा 'गाइड' कर दो तो मेरा काम हल्का..."

"मुझसे यह नहीं होगा." टका-सा जवाब दिया था उसने. पर कब छोड़नेवाला था तुहीन? आदमी का खून चख चुकने वाले शेर को आदमखोर होने से कौन रोक सका है? हर माह एक हजार रुपये की आय कुछ कम नहीं होती. अब उसने नये रास्ते ढूंढने शुरू कर दिये थे. अब वह उससे रिसर्च-स्कालरों को गाइड करवायेगा, ट्यूशनें करायेगा, नोट लिखवायेगा... खीझी थी वह.

रात पूरी तरह भीग चली है. भीतर से कोई आवाज भी नहीं आ रही. पता नहीं, इस निस्पंदता का क्या अर्थ है? जी करता है, एक बार भीतर झांक ही आये! पर नहीं, वह अब तक इतनी टूट चुकी है कि बहुत कुछ झेलना उसके बूते की बात नहीं रही.

नीचे के ज्वार में और तेजी आयी है. लगता है, पानी अब सीढ़ियों को छूकर ही बहने लगेगा. हवा ज्यादा ही ठंडी हो गयी है. एक शाल ही अंदर से डाल आती, पर नहीं, अंदर की यात्रा अब संभव नहीं है. निकलते समय ही देखा था उसने-तुहीन के विवर्ण हो आये चेहरे को. अब कुछ आशा नहीं रही थी.

समाज अपने असली रूप में आ गया था. गौरव और उसे लेकर गलत-सलत बातों को उछाला जाने लगा था. यह सही था कि गौरव का रिसर्च उसका काफी समय लेने लगा था और घर तो घर विभाग के खाली घंटों में भी वह गौरव और उसके कामों से ही घिरी रहने लगी थी. किसी कार्य को आधे मन से करना उसने सीखा नहीं. अगर उसके 'गाइडेंस' के बावजूद गौरव को डिग्री नहीं मिलती तो बदनामी गौरव की जो होती सो होती, तुहीन की भी कम नहीं होती. सच तो यह था कि तुहीन की प्रतिष्ठा को ही दांव पर चढ़ी देख उसने इस तरह जी-जान लगा दिया था.

ऐसा नहीं कि लोगों की बात उस तक नहीं पहुंची थी. पर वह मानती थी कि जब तक तुहीन का उस पर भरोसा है, उसे किसी और की चिंता नहीं. वह जो कर रही थी तुहीन के आदेश से, उसी की खुशी के लिए.

पर उसे कहां पता था कि जिस आधार को वह ठोस चट्टान समझ रही थी, वह गीली रेत के सिवा कुछ नहीं था, कि सब कुछ सामना करने के लिए प्रस्तुत रहना और समय आने पर सब कुछ झेल लेना बिल्कुल अलग-अलग बातें थीं. कुछेक सप्ताहों में ही तुहीन के तेवर बदलने लगे थे. कहता तो वह कुछ नहीं था, पर उसकी आंखों और चेहरे के भावों को पढ़ने से वह बाकी नहीं रही थी.

शाम को तुहीन लौटा तो कुछ ज्यादा ही कोमल बन आया था, पर जो तीर तरकस से निकल गया था, उसका क्या करता वह? जो जख्म शालिनी के कलेजे में हो चुका था, वह अब आसानी से भरने को था क्या? नहीं, न उस दिन भरा था वह न आज तक भरा है—आज जब तुहीन अंदर दम तोड़ रहा है और जब शालिनी के अंदर तीसरा बच्चा बाहर की दुनिया को देखने के लिए मचल रहा है.

"बच्चा? तीसरा बच्चा!" एक ज्वार-सा उठा है शालिनी के अंदर. रेलिंग के पास पड़ी कुर्सी पर ही थरथरा कर बैठ गयी है वह. पांव शायद उसके बोझ को नहीं बर्दाश्त कर सकते. उसका कर भी लें तो कर लें, पर इस तीसरे बच्चे का? नहीं, नहीं. इसका वे नहीं कर सकते..."

यही बच्चा, यही बच्चा तो उसके सर्वनाश के मूल में है यही तो है वह पितृहंता जिसने तुहीन को मृत्युशैया पर और शालिनी को एक अंतहीन अंधी गली में झोंक दिया है.

जिंदगी फिर सहज गति से चल पड़ी थी. किट्ठी के आनेके कुछ दिनों बाद प्रस्ताव रखा था तुहीन ने 'हम दो, हमारे दो.' की नीति अपनाने का. शालिनी को कोई आपत्ति नहीं थी, पर उसके स्वास्थ्य का ध्यान रख

लघुकथा

औकात

▣ नरेंद्र आवारा

उसने सब्जी का टोकरा आलीशान भवन के मुख्य द्वार पर रखा और आवाज लगायी, "बीबीजी सब्जी लेई लो."

कीमती परिधान में लिपटी चालीस-पचास वर्षीय मालकिन ने भवन की पहली मंजिल से आवाज दी, "मंहगी तो नहीं लगायेगी?"

"नाही बीबीजी, जो तुहार दिल में आवे, सो देई देना."

"धनिया, अदरक और हरी मिर्च भी साथ देनी पड़ेगी."

"दे देंगे बीबीजी."

मालकिन नीचे आयी, सब्जी छांटते हुए उसने पूछा, "क्यों री, पहले तो तू ठीक-ठीक पैसे लगाती थी, अब ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच-पांच पैसे ज्यादा क्यों लेने लगी है?"

"का करें बीबीजी, गईल महनवां में बिटिया के हाथ पीले करीन थे, सारा पैईसा ब्याह में लगा देईन. हम सच कहत है, बिटिया के सुख का खातिर हम सबसे ज्यादा पंईसा खर्च किये है. बहुत सारा कर्जा भी हो गईन है. ओ सब चुकाना भी तो है."

"अरी, तूने ऐसा कितना खर्च कर दिया. हमें देख, हमने अपनी बेटी की शादी में पूरे पांच लाख खर्च किये थे."

"ये तो कुछ भी नहीं है बीबीजी, हमार तो इससे भी ज्यादा लग गईन."धनाढ्य महिला के हाथ से करेले छूट गये. एकदम मुंह से निकला, "क्या?"

"हां बीबीजी, हम सच कहत है. हमार दो तोले की चांदी की पेंजनियां, हमार बेटे की घड़ी, बहू की सोने की नथ, हमार मर्द की चांदी की अंगूठी, दो पीतल के गिलास, एक कटोरी, हमार छोटे बिटुआ के खिलौने, सब कुछ बिक गया बीबीजी. हमार मर्द साहूकार से पूरे पचास रुपये कर्ज लेई के लगा दिये. जब तक वा कर्जा न उतरी, हमार मर्द बिना पगार के काम करीबो. हमार तो सब कुछ लुट गईन बीबीजी. पांच लाख रुपल्ली का होत है!"

● 16/643 बापा नगर, करौल बाग, नयी दिल्ली-110005

दिन अच्छी तरह निकल चले थे. किट्टी कोई साल भर की हो चली थी. गौरव का रिसर्च अब समाप्ति पर था.पता नहीं क्यों इधर तुहीन ने पहलेवाली पाबंदी समाप्त कर दी थी. शायद गौरव का काम अच्छी तरह निकला था और वह उसे बीच में हतोत्साहित नहीं करना चाहता था अथवा शालिनी के खाली क्षणों को पाटने का यह सृजनात्मक बहाना उसे भी भा गया था, पर अब गौरव का समय-बे-समय हाजिर हो जाना अथवा विभाग में ही शालिनी को उसके साथ सदा मशगूल रहना उसे बहुत बुरा नहीं लग रहा था. पर लोग थे कि अपनी बात करते ही जा रहे थे. तुहीन और शालिनी के संबंधों को जितना उन्होंने परवान चढ़ाया था, उतना ही वे गौरव और उसके संबंध को गलत अर्थ देने में लगे थे. तुहीन को यह सब झेलना और कठिन हो आया था. उसका स्वास्थ्य पहले से ज्यादा खराब रहने लगा था और वह काफी चिड़-चिड़ा हो आया था. एक दिन उसने कहा भी कि वह अपना बी.पी. चैक-अप करा ले, पर वह बात टाल गया था. वह सोच रही थी कि यह सब इतना भारी पड़ रहा है उसके लिए तो क्यों नहीं वह गौरव को पूरी तरह जवाब दे देता है, पर वह शायद इतना कमजोर नहीं बनना चाहता था, न शालिनी की नजर में, न समाज की. . . . . .

रात शायद अब कम ही बाकी है. दूर के पेड़ों से कौओं की कांव-कांव आरंभ हो गयी है. पूरब का क्षितिज इंगुरी हो चला है और हवा में ठंडक अब बर्दाश्त से बाहर हो आयी है. उसे शायद अब अंदर जाना ही पड़ेगा, तुहीन नहीं तो अपने लिए, वरना वह यहीं जमकर पत्थर हो जायेगी, शिला, जैसे अहिल्या!

उसे इस हालत में भी हंसी आने को होती है. स्मिति की को रेखा उसके होठों पर शायद खिलती भी है. अब अहिल्या से अलग उसकी नियति भी क्या है? तीन माह बाद जब वह इसी अस्पताल में किसी नर्सिंग होम में अपने मातृत्व को तीसरी निष्कलुष अभिव्यक्ति,देगी तब यह समाज उसे अहिल्या के रूप में सदा-सदा के लिए अभिशप्त कर देगा. तब तो तुहीन भी नहीं होगा इस अभिशाप का सहभागी बनने को. उसे अब सब कुछ अकेले. . .

हां, निष्कलुष ही था उसका मातृत्व. नहीं आ रही थी यह तीसरी संतान किसी भूल-चूक का परिणाम बनकर. यह बात तुहीन की समझ में नहीं आयी थी और एक सप्ताह पूर्व ही जब अब तक छिपाये इस भेद को उसने उस पर खोल दिया था तो वह जैसे कागज-सा सफेद हो आया था. तनाव भरा तो वह पहले से ही चल रहा था और इधर काफी दुर्बल हो आया था, पर आखिर कब तक छिपाये रहती वह इस राज को इससे? एक एक दिन तो उसे प्रकट होना ही था, पर उसे क्या पता था कि वह सचमुच इतना कमजोर था और समाज उस पर इस कदर हावी कि वह इस सूचना को सुनते ही. . . केवल एक अधूरा वाक्य निकला था उसके मुंह से, जो उसने जीवन का अंतिम वाक्य बन आया था, "मेरे ऑपरेशन के एक साल बाद तुम मां. . . .मैं समाज को कौन. . सा. . ."

समाज! समाज! समाज! शालिनी ने चाहा था बहुत कुछ कहना, यह भी कि यह और किसी का नहीं, तुहीन का ही अंश था कि गौरव और उसके संबंध ने सीता और लक्ष्मण के बीच की पौराणिक लक्ष्मण-रेखा को कभी पार नहीं किया, कि अपने अंदर कुछ परिवर्तन पाते ही वह एक बार बाहर के शहर के क्लीनिक में दौड़ी थी और उसे वहां बताया गया था कि कभी-कभी ऑपरेशन में कुछ नुक्स रह जाने पर ऐसा होना सर्वथा संभव है. . .पर अब किसे सुनाना और किसे समझाना? वह तो 'इंस्टेंट हैमरेज' का शिकार हो इस लंबे कोमा में चला गया था, जिसकी समाप्ति आज इस रूप में हो रही थी.

अब किसे समझाना और बताना? वही समाज, जो उसके जीवन-नाटक का सूत्रधार बना था, आज नाटक की समाप्ति के पूर्व ही यवनिका खींच रहा है. अब वह कौन-सा मुंह दिखायेगी उसे. अब तो तुहीन भी नहीं रहेगा यह सिद्ध करने के कि जिसे अहिल्या के रूप में अभिशप्त होने को बाध्य होना पड़ रहा है, वह सचमुच किसी सीता से कम नहीं!

कुर्सी से उठ खड़ी हुई है वह. बाहर पूरी तरह उजाला फैल चुका है. गंगा का मटमैला बरसाती पानी कुछ ज्यादा ही गंदला लगने लगा है. उसके पैर कांप रहे हैं. दो-दो जानों का भार है उन पर. . . □

● संयुक्त निदेशक, राजभाषा, रेलवे बोर्ड, रेल मंत्रालय, नयी दिल्ली-110001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...और भुलाये न बनें

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

नसीहत

▣ मेवाराम कटारा 'पंक'

दिसंबर की कड़ाके की सर्दी में प्रातः सात बजे जानेवाली राजस्थान रोड़वेज की बस में जयपुर जाने के लिए प्रवेश किया तो कंडक्टर मेरे पैर छूने के लिए झुका. पहचानने में देर नहीं हुई कि अपना ही पूर्व छात्र है. बातों और व्यवहार से ज्ञात हुआ कि ड्राइवर और कंडक्टर के विचार मेल नहीं खाते. वे एक-दूसरे की बात काटते हैं.

"ड्राइवर तुम्हारे कहने पर गाड़ी नहीं रोकता ऐसा क्यों है?" मैंने पूछा.

"क्योंकि साहब, मैं इसके कहने के अनुसार काम नहीं करता हूं."

"भई ऐसा क्यों करते हो, दोनों मिलकर चला करो न."

"सर, मैं उसके कहे अनुसार नहीं कर सकता."

"ऐसा क्या कहता है वह जिसे तुम नहीं कर सकते?"

"उसका कहना है रास्ते के टिकिट मत काटा करो ताकि पैसे हमारी जेब में रह जायें. मैं ऐसा नहीं कर सकता. निगम वेतन देता है. कैसे करूं और क्यों करूं साब, आप ही बताइये."

"क्या हुआ, तुम भी कर लिया करो. दोनों को लाभ है. दोनों में प्रेम. तुम दोनों ही तो एक दूसरे के सहायक हो सकते हो." मैंने समझाते हुए कहा.

"गुरुजी, यह बात आप कह रहे हैं? आपने ही तो कहा था 'दो पैसे पर ईमान मत बेचना' और आप ही आज मुझे यह आदेश दे रहे हैं. मैं इनमें से कौन सी बात पर चलूं? क्या उचित है और क्या अनुचित है? मैं समझ नहीं पाया."

मैं अवाक् रह गया. ऐसा लग रहा था मानो किसी ने मेरे गाल पर तमाचा जड़ दिया हो. □

आप को कहीं देखा है

▣ अरुण मिश्र

बात उन दिनों की है जब मैं, रामचरण और डॉ. एल. एस. चौहान सागर विश्वविद्यालय (म. प्र.) में साथ-साथ पढ़ते थे. डॉ. चौहान अपने पिता को, होम्योपैथिक अस्पताल में सहयोग करते थे. डॉ. चौहान बचपन से ही कुछ भुलक्कड़ प्रवृत्ति के थे.

उनकी भूलने संबंधी एक घटना इस तरह है. एक दिन वे अपना अस्पताल रोज की भांति एक बजे बंद करके घर जा रहे थे. मैं उनके साथ था. हम चाय पीने की इच्छा से नजदीक के एक होटल में पहुंचे. चाय पीकर बिल भुगतान करने जब काउंटर पर पहुंचे तो एक ग्राहक वहां पहले से ही मौजूद था. उसे देखकर डॉक्टर मुझसे बोले, "यार मिश्र जी, मैंने इस व्यक्ति को कहीं देखा है." और उसके पास जाकर बोले, "लगता है आपको कहीं देखा है. आप क्या सागर ही के रहने वाले हैं?"

पहले तो वह व्यक्ति मुस्कराया, फिर उसने अपना एक जूता उतारा और बोला, "डॉक्टर, इतने मारूंगा कि सब याद आ जायेगा." डॉ. चौंके. "रम्मा भाई (रामचरण) आप!" मेरा और वहां उपस्थित लोगों का हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया. दरअसल रामचरण के परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने की वजह से उसी दिन उसने सिर और दाढ़ी-मूछें मुड़ाई थीं. □

वह भूखा बच्चा

▣ सविता तिवारी

नन्हे-मुन्नों की उस कक्षा में मेरा घंटा मध्यावकाश के ठीक पहले पड़ता था. उस समय तक बच्चे लगातार पढ़ाई और भूख के कारण इतना थक चुके होते थे कि उन्हें कुछ सिखा पाना मेरे लिए बड़ा ही कठिन था.

एक दिन मैं अपने उद्देश्य के प्रति प्रयत्नशील थी कि तभी बड़े जोर से चिल्लाकर रोने की आवाज आयी. मैं तेजी से आवाज की दिशा में घूमी. रोता हुआ एक बच्चा दूसरे बच्चे की ओर उंगली से इशारा कर रहा था.

इस प्रकार व्यवधान डालने के कारण बुरी तरह झुंझलाई हुई मैं दूसरे बच्चे को एक चांटा लगाने जा रही थी कि एकाएक रुक गयी. वह आराम से बैठा खाना खा रहा था. मैंने बच्चे से रोने का कारण पूछा. सिसकते हुए वह बोला, "इसने मेरा खाना खा लिया."

डर से सहमा हुआ दूसरा बच्चा भी खाना छोड़कर मेरी ओर और कभी रोते बच्चे की ओर देखने लगा. मैंने दूसरे बच्चे से उसके इस व्यवहार का कारण पूछा. परंतु बिना कोई उत्तर दिये वह टुकुर-टुकुर मेरी ओर देखे जा रहा था. बीच-बीच में उसकी ललचाई दृष्टि आधी छूटी रोटी की ओर भी चली जाती. हारकर मैंने उसी विद्यालय के छात्र उसके बड़े भाई को बुला भेजा. आवश्यक पूछताछ के बाद मिली जानकारी से मैं स्तब्ध रह गयी. उसने बताया कि अत्यधिक निर्धन होने के कारण वे एक समय भोजन कर पाते थे. शुल्क मुक्ति के कारण किसी प्रकार शिक्षा प्राप्त कर रहे थे. मैं यह निर्णय नहीं ले पा रही थी कि भूख से व्याकुल बच्चे ने जो कुछ किया क्या वह वास्तव में अनुचित था? □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग

• रमेश उपाध्याय

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी आग बुझाने के महकमे में काम करता था. वह कोई बड़ा अधिकारी नहीं, दमकल-केंद्र का एक छोटा-सा कर्मचारी था, लेकिन अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझता था. दिन का वक्त हो चाहे रात का, वह अपनी ड्यूटी पर हमेशा मुस्तैद रहता. ज्योंही दमकल-केंद्र को कहीं से आग लगने की सूचना मिलती, अधिकारी अक्सर उसी को बुलाकर आदेश देते और वह अन्य कर्मचारियों के साथ दमकल-गाड़ी पर सवार होकर आग बुझाने चल पड़ता. अपनी जान जोखिम में डालकर वह आग में घिरे हुए लोगों को बाहर निकालता और जल्दी से जल्दी आग बुझाकर संपत्ति को नष्ट करने से बचाता. कई बार वह दूसरों को बचाने की कोशिश में खुद मरते-मरते बचा था और अपनी साहसपूर्ण कर्तव्यपरायणता के लिए देश की सरकार से इनाम-इकराम भी पा चुका था.

वह एक नौजवान और खुशमिजाज इंसान था. वेतन उसे ज्यादा नहीं मिलता था, लेकिन वह हमेशा संतुष्ट और खुश नजर आता था. परिवार में उसकी पत्नी और उसके बच्चे उससे बहुत प्यार करते थे. दमकल-केंद्र में उसके साथी कर्मचारी भी उससे खूब प्यार करते थे. शायद इसीलिए रोज आग की लपटों में घुसकर अपनी जान जोखिम में डालने के बावजूद वह स्वयं को बहुत सुखी महसूस करता था.

लेकिन इधर कुछ दिनों से वह थोड़ा उदास, परेशान और विक्षुब्ध रहने लगा था. हालांकि उसने अपनी किसी जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ा था, फिर भी ऐसा लगता था कि वह कुछ विरक्त-सा होता जा रहा है. बात यह थी कि

उन दिनों शहर में रोज ही कहीं न कहीं आग लग जाती थी, और वह किसी की असावधानी से अनजाने में नहीं लगती थी, बल्कि कुछ लोगों के द्वारा जानबूझकर लगायी जाती थी. अनजाने लग जानेवाली और जानबूझकर लगायी जानेवाली आग का फर्क उस आदमी को मालूम था. अनजाने में अचानक लग जानेवाली आग को देखते ही सब लोग मिलजुलकर उसे बुझाने की कोशिश करने लगते हैं और छोटी-मोटी आग खुद ही बुझा लेते हैं. बेकाबू होती दिखायी देती है तो फौरन दमकलवालों को बुला लेते हैं. लेकिन जानबूझकर लगायी जानेवाली आग कुछ और ही होती है!

उस आदमी को पिछले दिनों इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था. उन दिनों शहर में रहनेवाले दो धार्मिक संप्रदायों के लोग कभी भी, किसी भी बात पर, या बिना बात भी आपस में लड़ने लगते थे. अजीब धार्मिक लोग थे वे! धर्म-ग्रंथों की जगह उनके हाथों में हथियार होते. मुंह से वे अपने-अपने उस ईश्वर की जय बोलते, जो सबका पिता और पालनहार था, लेकिन हथियारों से वे सामने आनेवाले सब लोगों को मारते चलते. औरतों, बच्चों, बुजुर्गों और बीमारों को भी. उन्हें इतने से ही संतोष न होता. वे शहर की बस्तियों, दुकानों, दफ्तरों और कल-कारखानों में आग लगा देते और जिंदा लोगों को उस आग में झोंक कर भून डालते. वे अपनी लगायी हुई आग को हवा दे-देकर फैलाते और आग बुझानेवालों को अपना दुश्मन मानकर मौत के घाट उतार देते. दमकलवालों से तो उन्हें खास दुश्मनी थी. वे आग लगाकर दमकल-केंद्र के अधिकारियों को टेलीफोन करके धमकाते कि आग बुझाने के लिए किसी को भेजा तो परिणाम अच्छे न होंगे. फिर भी यदि दमकल-गाड़ियां आग बुझाने जातीं तो वे उनका रास्ता रोक देते और उन पर गोलियां चलाते.

वह आदमी खुद भी ऐसे हादसों से गुजर चुका था. एक बार आग बुझाते समय कहीं से गोली आकर उसके

किसी देश के किसी शहर में......

इस शीर्षक योजना के अंतर्गत कथाकार रमेश उपाध्याय आजकल रूपक-कथा में अभिव्यक्ति की संभावनाओं का जायजा ले रहे हैं. इस क्रम में पिछले अंकों में आप क्रमशः 'बोझ', 'रोशनी', हवा' और 'मिट्टी' चार कहानियां पढ़ चुके हैं. इस बार पढ़िए इस श्रृंखला की पांचवी कहानी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंधे में लगी थी और वह कई दिनों तक अस्पताल में पड़ा रहा था. जिंदा तो बच गया था, लेकिन उसके अंदर भरा रहनेवाला उत्साह धीरे-धीरे मरने लगा था. यही चीज वह अपने साथ काम करनेवाले दूसरे लोगों में भी देख रहा था. जोश और जिंदादिली की जगह अब उनके चेहरों पर भय की मुर्दनी-सी छायी रहती. लोगों की जान बचाने के लिए आग में कूद पड़ना एक बात है, आग बुझाने की कोशिश में आग लगानेवालों के हाथों मारे जाना एकदम दूसरी बात.

एक रात वह आदमी दमकल-केंद्र में अपनी ड्यूटी पर तैनात था. उसके अधिकारी उससे यह कहकर अपने-अपने घर सोने चले गये थे कि कोई हादसा हो तो वह उन्हें टेलीफोन कर दे. उसके साथी कर्मचारी भी दमकल-केंद्र में इधर-उधर लेटे-बैठे ऊंघ रहे थे. लेकिन वह मुस्तैदी से जागता हुआ टहल रहा था और सोच रहा था, आग लगानेवाले आखिर चाहते क्या हैं? और सरकार उनके आगे इतनी विवश क्यों है कि कुछ भी नहीं कर पा रही है? स्वयं कुछ नहीं कर पा रही है तो शहर की जनता को आग लगानेवालों के खिलाफ एकजुट क्यों नहीं करती? क्या वह खुद ही लोगों को आपस में लड़ाना चाहती है? या यह किसी देश की साजिश है?...

अचानक टेलीफोन की घंटी बजी.

उस आदमी ने दौड़कर फोन उठाया. दूसरी ओर से कोई बेहद घबरायी हुई आवाज में बोल रहा था, "सुनिए, यहां लड़ाई हो गयी है... वे लोग हमारे घरों को आग लगा रहे हैं... कई मकान जल रहे हैं... वे बुझाने भी नहीं देते... आप लोग फौरन आइए, नहीं तो सारी बस्ती..."

"आप कहां से बोल रहे हैं?" उस आदमी ने पूछा.

"मैं सार्वजनिक टेलीफोन से..." उधरवाला आदमी बता ही रहा था कि अचानक एक धमाका सुनायी दिया और उसकी प्राणांतक चीख, "आह, मार डाला..."

उधर से आवाज आनी बंद हो गयी.

उस आदमी ने दमकल-केंद्र की खतरे की घंटी बजाकर अपने सब साथियों को जगा दिया और उन्हें दमकल-गाड़ियों पर सवार होने के लिए कहकर पुलिस विभाग को फोन मिलाने लगा. काफी देर बाद उधर से फोन उठाया गया और एक उनींदी-सी आवाज आयी, "फरमाइए, रात के दो बजे पुलिस आपकी क्या सेवा कर सकती है?"

"सुनिए, मैं दमकल केंद्र से बोल रहा हूं... अभी-अभी एक टेलीफोन आया था कि शहर में कहीं कोई लड़ाई हो गयी है... क्या आप बता सकते हैं कि यह कहां...?"

उधर से मजाहिया लहजे में कहा गया, "अजी हुजूर, लड़ाई कहां नहीं हो रही है? दुनिया के हर हिस्से में लड़ाई छिड़ी है. मैं खुद बीवी से लड़कर आया हूं..."

"देखिए, यह मजाक का वक्त नहीं है... मैं दमकल-केंद्र से बोल रहा हूं... मुझे सूचना मिली है कि शहर में कहीं आगजनी हो रही है. आप..."

"आग तो मेरे दिल में भी लगी हुई है, एक दमकल-गाड़ी इधर भी भेजो न यार..!"

"देखिए, आप होश में आइए, यह मजाक का वक्त नहीं है." उस आदमी ने दूसरे सिरे पर मजाक करनेवाले आदमी को डांटकर कहा, "मुझे यह बताइए कि शहर में आग कहां लगी हुई है और हम लोगों को कितनी दमकल गाड़ियां लेकर वहां पहुंचना है? यह आपका काम है, आपको खुद ही हमें सूचित करना चाहिए था!"

"ठहरो, देखते हैं." दूसरे सिरे से भन्नायी हुई आवाज आयी. फोन शायद किसी और को दिया गया. किसी और ने भारी आवाज में उस आदमी का नाम-धाम पूछा और उस जगह के बारे में बता दिया, जहां लड़ाई और आगजनी हो रही थी.

"हम लोगों के लिए क्या आदेश है?"

"हम क्या कह सकते हैं जब हमें ही ऊपर से कोई आदेश नहीं मिला है!"

पुलिस की काहिली से खीजकर उस आदमी ने बात बंद कर दी और दमकल-केंद्र के सबसे बड़े अधिकारी को फोन मिलाने लगा. उसके साथी दमकल-गाड़ियों पर सवार हो चुके थे, पर नियमानुसार रवाना होने से पहले दमकल-केंद्र के किसी अधिकारी से आदेश प्राप्त करना जरूरी था. नींद में खलल पड़ने से झुंझलाये हुए अधिकारी की आवाज सुनकर उस आदमी ने कहा, "साहब, हम लोगों को सूचना मिली है कि शहर में गरीबों की एक बस्ती में आगजनी..."

"सूचना किसने दी?" अधिकारी ने पूरी बात सुने बिना ही पूछा.

"वहीं का कोई आदमी था साहब, नाम-पता मालूम नहीं हो सका, लेकिन..."

"इतने सालों से तुम दमकल में काम कर रहे हो, तुमको यह नहीं मालूम कि सूचना देनेवाले का नाम-पता नोट करना कानूनन जरूरी होता है?"

"मालूम है साहब, लेकिन वह आदमी कुछ बता ही नहीं पाया. शायद उसे फोन करते समय ही मार डाला गया. लेकिन साहब, मैंने पुलिस से पूछकर पता लगा लिया है, आगजनी वाकई हो रही है."

"पुलिस ने हमसे मदद मांगी है?"

"जी...?"

"बेवकूफ! क्या पुलिस ने हमसे कहा है कि हम वहां आग बुझाने जायें?"

"जी नहीं, मगर..."

"तो हम वहां कैसे जा सकते हैं? न नीचे से कोई सूचना है न ऊपर से कोई आदेश!"

"लेकिन साहब, उस मरते हुए आदमी ने..."

"बकवास बंद करो और मुझे सोने दो. ऊपर से कोई आदेश आये या नाम-पतेवाला कोई जिंदा आदमी सूचना दे, तब मुझे टेलीफोन करना!" अधिकारी ने बात बंद कर दी.

उस आदमी को बहुत बुरा लगा. वह कहना चाहता था, "आप तो अधिकारी हैं, स्वयं जाकर पता लगा सकते हैं और निजी सूचना के आधार पर हम लोगों को आग बुझाने भेज सकते हैं. किसी बड़े आदमी का घर जल रहा होता तो आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी सिर के बल दौड़े हुए आते, गरीबों की बस्ती जल रही है, इसलिए कानून छांट रहे हैं!"

आदेश न मिलने के कारण उस आदमी के साथी दमकल-गाड़ियों से उतर आये और मजाक करने लगे, "अरे भाई, खामखां साहब की नींद खराब की! बड़े अफसर हैं, बड़े लोगों की सेवा करते हैं! गरीबों की बस्ती जल रही है, कोई स्काई-स्क्रेपर तो नहीं!"

"बीमा कंपनी को चूना लगाने के लिए कोई दुकान या फैक्ट्री जलायी जा रही होती तब भी कोई बात थी! सब कुछ खाक हो जाने का सर्टिफिकेट देकर बेचारे कुछ कमा लेते!"

"परसों देखा था, उस तेल-मिल में आग लग जाने की खबर साहब खुद जाकर लाये थे!"

साथी कर्मचारी हंस रहे थे, लेकिन वह आदमी बेहद परेशान था. वह दौड़कर दमकल-केंद्र की छत पर गया. अंधेरी रात का काला आसमान एक तरफ से लाल हो रहा था और आग की ऊंची-ऊंची लपटें उठती दिखायी दे रही थीं. नीचे आकर उसने बड़ी घबराहट के साथ कहा, "भाइयो, वह बस्ती हम लोगों की कालोनी के बिल्कुल करीब है. अगर आग बुझायी नहीं गयी तो हमारे क्वार्टरों में भी पहुंच सकती है. घरों और बाल-बच्चों को बचाना है तो कुछ करो."

चिंतित और परेशान दूसरे भी थे, पर समझ नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये. बोले, "ऊपर से आदेश पाये बिना हम वहां कैसे जा सकते हैं?"

"तो आदेश की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें?"

"मजबूरी है! सरकार ने नियम ही ऐसे बना रखे हैं!"

"सो लो, आग फैल रही है. हमारे घर बचेंगे नहीं."

"पर हम कर ही क्या सकते हैं?"

"चलो, आग बुझाने चलते हैं. जितनी भी गाड़ियां हैं, सब ले चलो."

"नहीं, यह गैरकानूनी होगा. सबकी नौकरी जायेगी."

उस आदमी को गुस्सा आ गया. चिल्लाकर बोला, हम कानून की बात कर रहे हैं, लेकिन कानून रह कहां गया है? क्या घरों में आग लगाना कानूनी है? पूरी-पूरी बस्तियां जलाकर राख कर देना कानूनी है? लोगों को आग में जिंदा भून देना कानूनी है? आग बुझानेवालों को मार डालना कानूनी है? शहर में आग लगी होने पर भी दमकल-केंद्र को सक्रिय न करना कानूनी है?"

कोई कुछ नहीं बोला, सबके दिलों में दहशत समायी हुई थी.

वह आदमी फिर टेलीफोन के पास गया. वह बड़े अधिकारी को सूचित करना चाहता था कि आग दमकल-कालोनी की तरफ बढ़ रही है. अपने साथियों की पस्तहिम्मती ने उसमें एक दीनता-सी भर दी थी. वह अधिकारी के आगे गिड़गिड़ाने तक को तैयार था. कहना चाहता था, "रहम कीजिए साहब, हमारे बाल-बच्चों की जिंदगी का सवाल है, हम लोगों को आग बुझाने के लिए जाने दीजिए!" लेकिन टेलीफोन को कान से लगाने पर उसने पाया, उसमें कोई आवाज नहीं है. इस बीच टेलीफोन जाने कब मुर्दा हो गया था.

रिसीवर पटक कर वह आदमी वहीं बैठ गया. उसके साथी भी टेलीफोन के इर्द-गिर्द घेरा बनाकर बैठ गये. सब एकटक टेलीफोन को ही देख रहे थे उन्हें उम्मीद थी कि अभी घंटी बज उठेगी. शायद फिर कोई आदमी आग लगने की सूचना देगा. या ऊपर से आदेश आ जायेगा.

लेकिन टेलीफोन खामोश पड़ा रहा. मुर्दा!

सुबह के छह बजे उनकी ड्यूटी बदलनी थी. जब तक सुबह की ड्यूटीवाले दूसरे कर्मचारी न आ जायें, नियमानुसार किसी अधिकारी की आज्ञा के बिना वे दमकल-केंद्र से हिल भी नहीं सकते थे. और अभी सिर्फ तीन बजे थे. पूरे तीन घंटे बाद उन्हें छुट्टी मिलनी थी, और उन्हें एक-एक मिनट गुजारना भारी पड़ रहा था.

तभी उन्होंने देखा, सुबह की ड्यूटी वाले कर्मचारी दौड़े चले आ रहे हैं. हांफते हुए बदहवास. बेहद आतंकित. उन्हें आते देख सब खड़े हो गये. उस आदमी ने आगे बढ़कर पूछा, "आग हमारे घरों तक पहुंच गयी क्या?"

"हां." उन लोगों ने मानो एक स्वर में कहा, "और तुम लोग यहां हाथ पर हाथ रखे बैठे हो? क्या तुम्हारा कोई फर्ज नहीं है?"

"पर तुम लोग अपने जलते हुए घरों को छोड़कर यहां क्यों आये? टेलीफोन कर देते!"

"बहुत कोशिश की. . .कोई टेलीफोन काम नहीं कर रहा है! . . .न यहां का, न पुलिस का. . .वहां वे लोग सब घरों को आग लगा रहे हैं. . .लूट रहे हैं. . .जो उन्हें रोकता है, उसे मार रहे हैं. . .हम लोग अंधेरे में छिपते-छिपाते किसी तरह अपनी जान बचाकर आ पाये हैं. . .ऐसी आग तो कभी नहीं देखी. . . आग लगानेवाले निर्भय हैं, उन्हें किसी की परवाह नहीं. . .अपनी भी. . ."

उस आदमी ने उन लोगों की बातें सुनकर रात की ड्यूटीवाले अपने साथी कर्मचारियों की ओर देखा और जोर से बोला, "सुन लिया भाइयो? क्या अब भी कानून का पालन करते बैठे रहोगे? यह आग वे लोग निर्भय होकर लगा रहे हैं, हमें यह आग निर्भय होकर बुझानी होगी. वे लोगों की जान लेने के लिए अपनी जान जोखिम में डाल रहे हैं, हमें लोगों की जान बचाने के लिए अपनी जान जोखिम में डालनी होगी और हमारे लिए यह कोई नयी बात नहीं होगी हम हमेशा इसी तरह आग बुझाते आये हैं. उन्हें हमारे घरों में आग लगाते वक्त किसी कानून की चिंता नहीं हुई, कानून बनानेवालों और लागू करनेवालों को हमारे घरों को बचाने की चिंता नहीं रही, और हम हैं कि कानून से अपने हाथ बांधे हुए बैठे हैं! चलो, दमकल-गाड़ियों पर सवार हो जाओ. अब हम किसी के आदेश की प्रतीक्षा नहीं करेंगे!"

थोड़ी देर बाद टन-टन घंटियां बजाती हुई दमकल-गाड़ियां आग बुझाने जा रही थीं. □

● **बी-3/4, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-110007**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपुंसक

मधुकर सिंह

धारावाही उपन्यासिका : दूसरी किस्त

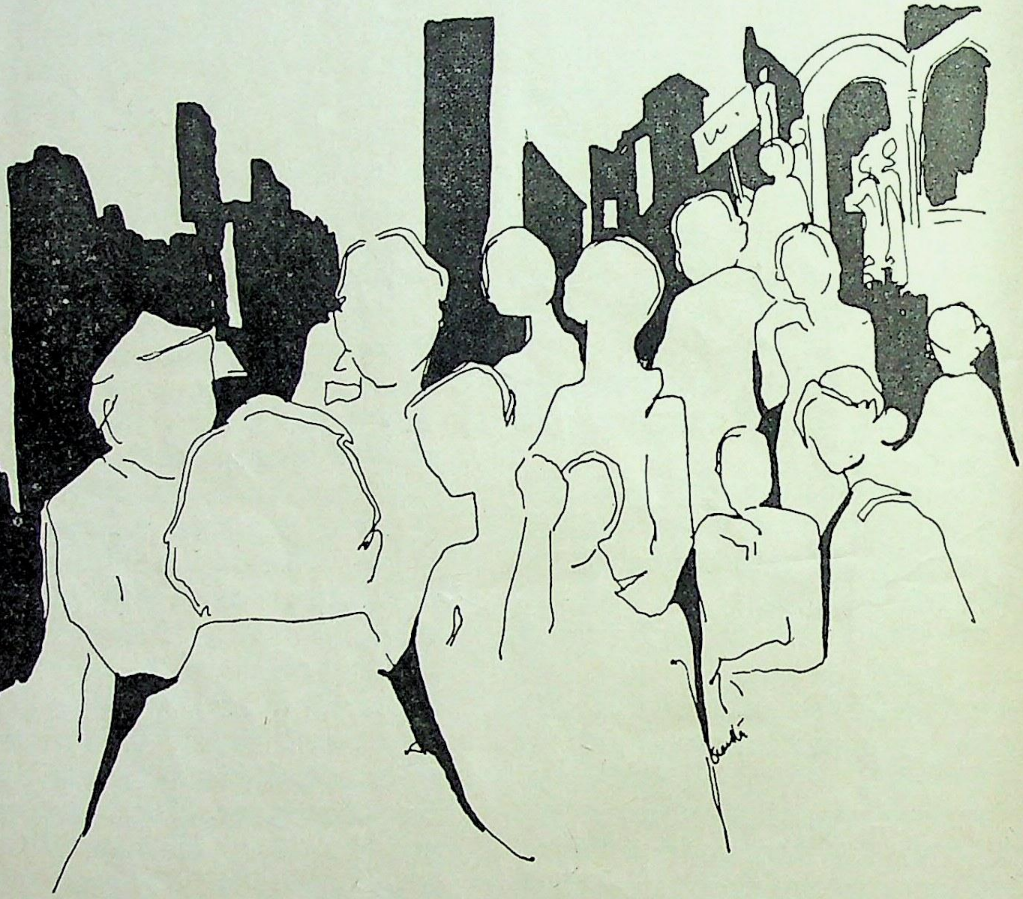

उसी रात को डॉ. अतुल प्रो. गुप्ता के मकान के सामने रुकते हैं. राजेंद्र नगर में जगह-जगह अंधेरा है. गुमटी के आर-पार दो-चार ट्रक और कुछ रिक्शे खड़े हैं. संभवतः रेलवे लाइन होने के कारण राजेंद्र नगर के इस इलाके का सन्नाटा जब-तब टूटता रहता है.

प्रो. गुप्ता के फ्लैट की सारी खिड़कियां अभी तक खुली हैं. सीढ़ियों पर वज्र अंधेरा है. परंतु डॉ. अतुल बदहवास चढ़े जा रहे हैं. कोई कुत्ता उनके पैरों से टकराकर चीखता है. नीचे से ऊपर तक सारे फ्लैट झनझना उठते हैं. अजीब भय जैसा लगता है. लेकिन नशे में डॉ. अतुल के पांव ऊपर की ओर भागते जा रहे हैं.

'स्साला एकदम ऊपरी मंजिल पर रहता है.' वे अंधेरे में काल-बेल न पाकर दरवाजा थपथपाते हैं. 'तो दोनों में पुनः मिलाप हो गया है?'

अचानक सुकीर्ति को सामने पाकर उन्हें अपने आने की सार्थकता पर खुशी होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले अंक में आपने पढ़ा——विश्वविद्यालय और अन्य महाविद्यालयों में हड़ताल है. सभी लड़के पढ़ाई को लेकर परेशान हैं मगर डॉ. अतुल जैसे प्राध्यापक इन सबसे बेखबर अपने लिए राजनीतिक माहौल बनाने में मशगूल हैं. वे आगामी चुनाव में खड़े होना चाहते हैं, और हों क्यों न, उनका काम ही शोषण करना है. दीपा, दामिनी, सुकीर्ति जैसी अपनी छात्राओं का शारीरिक शोषण करना और रोहित जैसे अपने अधीनस्थ छात्रों का राजनीतिक शोषण——इसके चलते दामिनी आत्महत्या करती है तो करे, दीपा थप्पड़ मारती है तो मारे, सुकीर्ति का पारिवारिक जीवन बिखरता है तो बिखरे और रोहित मानसिक रूप से पंगु होता तो होता रहे! . . . अब पढ़िए आगे की कहानी——

"गुप्ता कहां है?" अंदर बैठते हुए पूछते हैं.

"वे गुरुप्रसाद जी के फ्लैट में हैं."

"किसलिए?"

"आपको मालूम नहीं क्या, सर! प्रो. प्रसाद को जनसंघ ने विधान परिषद के लिए टिकट दिया है. उसी के संबंध में उन्हें बुलाया है."

"यह कैसे हो गया?" जैसे उनका नशा अचानक फटा हो.

"बेचारे वर्षों से उसके मेंबर थे."

"खाक थे." डॉ. अतुल झुंझलाते हैं, "ऐसे ही मूर्खों को पार्टियां टिकट देती हैं."

जनसंघवाले टिकट के लिए उनसे भी तो पूछ सकते थे? डॉ. अतुल ने कई अवसरों पर उन्हें मदद पहुंचायी है. कम-से-कम पूछने में क्या हर्ज था कि वे भी टिकट लेने के लिए तैयार हैं या नहीं हैं.

"चाय बनाती हूं, सर." सुकीर्ति खड़ी हो जाती है.

"नहीं." उसका हाथ पकड़कर बैठाते हैं, "गुप्ता कब आयेगा?"

"नहीं मालूम. बारह तो बजे हैं. अब क्या आयेंगे?"

"आओ, हम उस कमरे में चलें." डॉ. अतुल इस बार उसका हाथ पकड़कर खड़े हो जाते हैं.

"उस कमरे में बच्चे हैं."

"तब गुप्ता का कमरा तो होगा."

"मुझे नहीं मालूम."

"क्यों?"

"उन्होंने अलगाव के लिए ड्राफ्ट तैयार करा लिया है."

वे सुकीर्ति की अनिच्छा के बावजूद गुप्ता के कमरे में उसे ले जाते हैं. कुछ मिनटों में ही उन्हें नींद आ गयी और अब अर्द्धनग्न चित्त पड़े हुए हैं.

सुकीर्ति को अचानक एक आनंद सूझता है. उसने डॉ. अतुल के शरीर से सारे वस्त्र खींच लिये हैं और बच्चों के पास अपने कमरे में चली गयी.

लगभग डेढ़-दो घंटे बाद उनकी नींद खुलती है और बगल में सुकीर्ति और कपड़े न पाकर घबराने लगते हैं. वे नंगे उठकर सुकीर्ति का दरवाजा खटखटाते हैं.

सुकीर्ति जानबूझकर पड़ी हुई है और कुछ बोलती नहीं. जब बहुत गिड़गिड़ाते और विलाप करने लगते हैं तो सुकीर्ति खिड़की खोलकर बत्ती जला देती है. नंग-धड़ंग और वीभत्स आकृतिवाले डॉ. अतुल को देखते ही घृणा से उन पर थूक देती है और अपनी मुद्रा बदलकर जोर से हंसने लगती है.

डॉ. अतुल ने उसे इस तरह उन्मुक्त कभी नहीं देखा है. सुकीर्ति उनके समक्ष बराबर असहाय और विवश रही है. सुकीर्ति एक विनयी, संकोची और लज्जाशील लड़की रही है. हर समय ना कहनेवाली सुकीर्ति अपना सर्वस्व अर्पित कर देनेवाली एक अबला है. इसमें अचानक सबलता कहां से आ गयी है? सुकीर्ति अभी तक खिलखिला रही है.

"मुझे देर हो रही है. सुकीर्ति अब जाने दे ना?"

"इस भयानक रात को, सर?" वह अब भी हंसती जा रही है. "कितने अमानुष लग रहे हैं डॉ. अतुल."

"तो क्या हर्ज है रे, पगली," वे गिड़गिड़ाते हैं.

"तब जाइए न, सर!"

"मेरे पैंट और जांघिया कहां हैं?"

"मुझे क्या मालूम सर."

"देख सुकीर्ति, गुरु के साथ ऐसा भद्दा मजाक नहीं करते. मैंने तुम्हें बढ़िया क्लास दिलवाया. नौकरी दिलवायी. सारा एहसान भूल गयी?"

वह हंसती हुई थूकती है, "क्या आप नंगे युनिवर्सिटी कैंपस तक नहीं जा सकते. अभ्यास क्यों नहीं करते."

"देख, लगातार यह मजाक अच्छा नहीं लगता. कहीं गुप्ता आ गया तो बेकार में हम दोनों बदनाम हो जायेंगे."

"आ गये तब तो अलगाव के लिए उन्हें भी विशेष दिक्कत नहीं होगी."

सुकीर्ति ने सचमुच अपने मन को बहुत कड़ा कर लिया है. डॉ. अतुल यहीं तड़प-तड़पकर मर भी जायें तो भी उसे दया नहीं आ सकती. बच्चों के साथ मिलकर उनकी लाश को कुत्ते की तरह घसीटते हुए सड़क पर फेंक आयेगी. सुबह कार्पोरेशन की गाड़ी आकर उठा लेगी.

सुकीर्ति बच्चों के बगल में आकर सोने की कोशिश करती है. नींद नहीं आती. उसे पक्का पता चल गया है पति की नाराजगी का. उसने एक-दो-बार अतुल के यहां जाने से मना भी किया था. मगर रिसर्च के बहाने टालती जा रही थी. गुप्ता को तो डॉ. अतुल के मिजाज की छात्र-जीवन से ही जानकारी है. बल्कि सुकीर्ति पर उसे विवाह से पहले भी संदेह था. पहली रात को तो उसने पूछ भी लिया था. तब सुकीर्ति एकदम डर गयी थी. मगर गुप्ता उसकी सुंदरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सरलता के कारण सब कुछ भूल गया था. शादी के दिनों ही दामिनी के साथ वह दर्दनाक घटना हुई थी; अब दो-तीन बच्चों के बाद फिर तनाव उभरा है, और अनायास ही. जरूर डॉ. अतुल कारण होंगे.

जिस दिन गुप्ता ने कानूनी अलगाव की बात सोची थी उस दिन वह काफी बेचैन था. सुकीर्ति को भी क्रोध आ गया था. उसने अनाप-शनाप उत्तर देना शुरू कर दिया था. और मुंह से एक भद्दी बात निकल आयी थी, "हां! अतुल की रखैल हूं, उस बूढ़े शैतान की. क्या बिगाड़ लोगे मेरा? जिंदगी भर रहूंगी! ..."

सुकीर्ति बाद में इसके लिए पछतायी भी थी. गुप्ता से माफी भी मांगी थी. फिर बिफर-बिफरकर रोयी थी. तभी से गुप्ता के मन में वह ग्रंथि है, कभी-कभार सुकीर्ति को 'डॉ. अतुल की रखैल' कहकर चिढ़ा देता.

इधर कुछ दिनों से काफी घुटन में रहती है सुकीर्ति. मगर कायर औरतों में नहीं है कि आत्महत्या जैसी मूर्खता कर ले. जो परिस्थितियां उभरेंगी उसका डटकर मुकाबला करेगी.

पता नहीं मन में क्या हुआ जो गुप्ता की शिकायत करने डॉ. अतुल के पास सीधे चली गयी, जैसे डॉ. अतुल उसके पिता हों. शायद, वे उसके तनावों के बीच कोई मार्ग दें. उसे उनके यहां से लौटकर अफसोस भी हुआ था. उस भूखे भेड़िये के यहां जाकर उसने गलत किया. वह खुश है कि उसने अपराधी को स्वयं सजा दी है. उसे आज जिस हालत में उन्होंने पहुंचा दिया है उसके लिए उन्हें सजा तो मिलनी ही चाहिए. पहले तो वह पागल हो गयी थी और डॉ. अतुल को नंगे कूदते-फांदते देखकर मजाक उड़ा रही थी. परंतु धीरे-धीरे वह पागलपन सार्थकता में बदलता जा रहा है. अपराधी को बांधकर रखे हुए है. पति उन्हें इस हालत में देख तो ले. शायद, पति के मन से गलतफहमी का पर्दा हटे.

बाहर डॉ. अतुल चुपचाप पड़े हैं. कहीं उन्हें नींद तो नहीं आ गयी है? वह खिड़की से झांकती है. सचमुच सो गये.

वह धीरे-से बाहर निकलती है और उनकी एक टांग को रस्सी में फंसाकर खिड़की से बांध देती है. शायद, दारू का नशा अभी तक उन्हें दबोचे हुए है.

सुकीर्ति फिर सो रही है. मगर नींद कहां आ रही है? पति अभी भी आ जाता तो अपराधी को सामने हाजिर कर देती. क्या गुरुजी की पार्टी इतनी देर तक चलती होगी? तनाव के कारण गुप्ता घर लौटने को महत्व नहीं दे रहा होगा.

...लेकिन सुकीर्ति को लगभग एक वर्ष बाद पहली बार उसका इंतजार है. मगर पति तो गधा है, कुछ समझता ही नहीं. बात-बात में रूठ जाता है. एक वर्ष से लगातार रूठ रहा है. जैसे ही आयेगा, दौड़कर गले से लिपट जाऊंगी. वह मुझे मारता रहेगा तब भी लिपटी रह जाऊंगी.

रह-रहकर उसे लगता है, वह आ गया है. उठकर इधर-उधर, सीढ़ियों पर, नीचे कुछ दूर तक झांकती है—कितना जालिम है? दो-तीन माह से बोल-चाल भी नहीं है. उनके कमरे भी अलग-अलग हैं. घर पर बहुत कम भोजन करता है. बच्चों से पुछवाती है तो बहाना कर देता है.

आज चाहे जो भी हो, पत्नी की तरह उससे बातें करेगी. और उसकी हर चीज को बर्दाशत करेगी. कितना अच्छा होता कि आज पति भी डॉ. अतुल को घसीटकर सड़क तक ले जाने में साथ देता.

सुबह नींद खुलती है तो देखती है, बाहरी दरवाजा खुला है. डॉ अतुल और उनके कपड़े यहां से गायब हैं. केवल खिड़की से बंधी रस्सी अभी तक झूल रही है.

डॉ. अतुल पंद्रह दिनों बाद डिपार्टमेंट गये हैं. दो बातों से घोर आश्चर्य हो रहा है. दीवारों पर जो नारे चिपकाये गये हैं उनमें एक नारा यह भी है. प्रो. सुकीर्ति गुप्ता का सस्पेंस वापस लो. दूसरी बात यह कि पहले की तुलना में विश्वविद्यालय में अभूतपूर्व सन्नाटा है. डी. पी. कॉलेज में तो कब से तालाबंदी है. हरिदर्शन महिला महाविद्यालय के साथ-साथ विक्रमा कॉलेज, आर. डी. साइंस कॉलेज के छात्रों ने भी अनिश्चितकालीन हड़ताल कर दी है.

छात्र यूनिवर्सिटी आते हैं, मगर क्लास नहीं करते. प्राध्यापक भी आते रहते हैं और थोड़ी देर के लिए अपने-अपने विभागों में हंसी-मजाक के बाद वापस चले जाते हैं. जो रोज आते हैं उन्हें इस सिलसिले से गहरा संतोष है. आक्रोश उन्हें तब होता है जब अपनी सुविधा पर खतरा महसूस होता है. बराबर उन्हें वेतनमान की चिंता सताती रहती है. पिछले साल उन्होंने मंहगाई के खिलाफ नये वेतनमान के लिए आंदोलन किया था. लड़ाकू और जुझारू प्राध्यापकों के साथ पता नहीं सिन्हा साहब कैसे गिरफ्तार हो गये थे. और वे भागलपुर सेंट्रल जेल भेज दिये गये थे. वहां काफी सुविधा थी. ठंड के कारण सभी के लिए एक साथ गरम कोट बने थे. खाने-पीने का अच्छा-खासा इंतजाम था. प्राध्यापकों की सहानुभूति में तमाम युनिवर्सिटी-कर्मचारियों ने भी हड़ताल कर दी थी. कर्मचारियों की मांगें ज्यों-की-त्यों छोड़कर पच्चीस दिनों बाद प्राध्यापकों ने अपनी हड़ताल तोड़ दी थी. सरकारी सुविधाएं और मजेदार वेतनमान मिल जाने के कारण वे भूल गये थे कि उनके साथ तृतीय और चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी भी हैं और उनकी एक भी मांग पूरी नहीं हुई है. तमाम शिक्षक गरम कोट के साथ जेल से बाहर आ गये. उन कर्मचारियों को जब सरकार चालीस दिनों तक जेल में ठूंसकर तंग आ गयी तो मारपीटकर उन्हें छोड़ने लगी. धनीराम चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों का महामंत्री था जो आधी रात को जेल से छूटने के बाद अपने साथियों के लिए अहाते में ही रुक गया था. सुबह डॉ. सिन्हा को पता चला तो धनीराम के लिए माला लेकर गये. धनीराम ने माला ग्रहण करने से साफ इंकार कर दिया और उसने सिन्हा साहब को छूटते ही जवाब दिया, "आपने तो अपने कई साथियों को जेल में ही छोड़ दिया. मगर मैं कैसे जा सकता हूं. जब तक मेरा एक भी साथी जेल में है तब तक माला पहनना कितना अपमानजनक होगा, सर! आपके लिए हमने यातनाएं बर्दाश्त कीं. आपके बदले लाठियां खायीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्यचित्र : संतोष कुमार शर्मा

मगर आप लोग हमें छोड़कर चले आये. क्या ऐसा करना उचित था, सर? आप बड़े लोग हैं. हमसे आपका मेल ही क्या है?"

आज भी धनीराम वे दिन भूल नहीं पाया है. उसके कई साथी अभी तक बर्खास्त हैं. हाईकोर्ट में मामला लंबित है. धनीराम को अभी भी विश्वास है कि संयुक्त लड़ाई लड़ी गयी होती तो तृतीय और चतुर्थवर्गीय कर्मचारियों की मांगें तभी मान ली गयी होतीं. आज हम मिलकर लड़ें तो हमारी जीत निश्चित है.

वही सिन्हा साहब फिर छात्रों की हड़ताल के विरुद्ध किसी षड्यंत्र में तो नहीं लगे हैं? वह कांतिमोहन और सुकीर्ति दी के साथ जब-तब छात्रों की बैठकों में जाता है उनकी मांगों पर धनीराम के भी हस्ताक्षर हैं.

उसे सिन्हाजी को देखते ही बड़ी नफरत होती है. इस साल भी प्राध्यापकों की ओर से हड़ताल की बात चली थी. मगर सरकार ने डंडा उठाया तो डॉ. सिन्हा हाथ जोड़कर खड़े हो गये—अध्यक्ष होने के नाते हड़ताल का नोटिस वापस लेता हूं. इसके बाद ही उन्होंने धनीराम से मजाक किया था, "जाड़े के दिनों में हड़ताल शुभ होती है. सफलता भी मिलती है, गरम कोट भी. तुम लोगों ने अपनी हड़ताल गर्मियों में शुरू की थी. बेचारे छात्र तो इतने अभागे हैं कि उनके भाग्य में खाली पुलिस के डंडे हैं."

धनीराम डॉ. अतुल और डॉ. सिन्हा को पानी पिलाने के बाद जैसे ही जाना चाहता है कि इस बार डॉ. सिन्हा टोकते हैं, "और सब कैसा चल रहा है, धनीराम?"

"आपकी कृपा से किसी तरह चल रहा है, सर!"

"युनिवर्सिटी में इन दिनों कोई नयी बात है?"

"बहुत कुछ है, सर!"

"जैसे. . ."

"एक तो यही है कि विश्वविद्यालय ने डी. पी. कॉलेज में प्राचार्य के पद पर आपके नाम की सिफारिश की है."

डॉ. सिन्हा तमतमाये हुए घंटी टनटना रहे हैं और अपने छात्रों को उद्दंड, अनुशासनहीन, चरित्रहीन, नालायक, हरामी—पता नहीं कैसी-कैसी गालियां बकते जा रहे हैं. वे एक टेबल पर खड़े होकर बोल रहे हैं, "लड़को! मैंने घंटी बजा दी है. गंदी बातें छोड़ो. आरुणि और एकलव्य की गुरुभक्ति याद करो. हम तुम्हारे बाप तुल्य हैं. मेरा आदेश स्वीकार करो और अपने-अपने क्लास में जाओ."

डॉ. सिन्हा का चेहरा आवेश में तमतमा जाता है.

जो भी लड़के खड़े हैं, सिन्हा साहब की तेजस्विता का ठहाका लगाकर मजाक उड़ा रहे हैं.

कुछ देर तक सिन्हा साहब इधर-उधर उछल-कूद करते हैं. कमरों में लटके तालों को देखकर छात्रों की भीड़ के पास आकर खड़े हो जाते हैं, "तुम लोग समझते होगे मैं बेहूदे लालच में आ गया हूं. लेकिन, नहीं मेरे नौनिहालो, मैं भविष्य की कद्र करना जानता हूं. तुम्हारा आक्रोश मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं. मेरा स्वर बतायेगा कि मैं कितनी दूर तक तुम्हारे साथ हूं. और इस व्यवस्था के खिलाफ भी हूं."

लड़के अच्छी तरह जानते हैं कि डॉ. सिन्हा ने डी. पी. कॉलेज हड़ताल को किस तरह तोड़ने की कोशिश की है. वहां, जातिवाली बीमारी किस तरह कैंसर बनकर चबा रही है. वहां के नेतृत्व में भी भीतर-भीतर यह बात उठ गयी थी कि अपनी ही जाति के साथियों को संगठित करें. रामसिंह, बजरंगी लाल, अनवर, देवेश, नगीना और देवाशीष सभी छात्रों ने इस स्थिति पर गौर किया था. युनिवर्सिटी से रमेश और रोहित ने इनके अंतर्विरोधों को तोड़ने में काफी मदद पहुंचायी है. रोहित कुछ दूर तक ही इनके साथ चल पाया है. अकेला रमेश इनकी आंखें रह गया है. कांतिमोहन और सुकीर्ति दी के वैचारिक निर्देश भी जेल से मिलते रहते हैं.

ऐसी बात नहीं कि कुछ लड़कों को वे सारी मांगें पसंद नहीं अथवा वे हड़ताल तोड़कर क्लासों में लौटना चाहते हैं; बल्कि इन्हें असली दुनिया और जनता की लड़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं है. वे हड़ताल को भी पाठ्यक्रमों की तरह झेलते हैं. हड़तालों से उन्हें तनाव महसूस नहीं होता. वे हड़तालों को भी कॉलेज का दिलचस्प वाकया मानते हैं. और क्लास छोड़कर निठल्ला घूमते और ठहाका लगाते हैं.

विश्वविद्यालय और सभी कॉलेजों को मिलाकर एक संघर्ष-समिति बनायी गयी है, जिसमें विश्वविद्यालय से रमेश और रोहित, डी. पी. कॉलेज से रामसिंह, अनवर, अजीज, साइंस कॉलेज से दयाशंकर सूद और करुणा सेन, विक्रमा कॉलेज से अजय तिवारी और हरिदर्शन महिला कॉलेज से अपर्णा को रखा गया है. कॉलेजों में अव्यवस्था, प्राध्यापकों का परस्पर तनाव और जातपात, परीक्षाओं में सिफारिश और शिक्षा में खोखलापन आमतौर पर सबको सालनेवाला है. जब-जब उनकी बैठकों में ये बातें उठी हैं उनकी मुट्ठियां तनी हैं और आक्रोश भभका है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तरह से डॉ. अतुल को कांतिमोहन और सुकीर्ति की गिरफ्तारी से कोई परेशानी नहीं है. लड़कों के 'खेल-तमाशे' से वे बराबर तटस्थ रहे हैं. रोहित जैसे लड़के जब उनके शिष्य हैं तब खतरा ही कहां है? कुछ बदहवास लड़के हैं जिन्हें बंदूक और जेल ठिकाने लगा देंगे. अब तो गुप्ता सुकीर्ति को और भी स्वीकार नहीं करेगा. सुकीर्ति पत्नी से राजनीतिज्ञ हो गयी है. ऐसे मौके पर गुप्ता उसे तलाक दे दे, तब तो मजा आ जायेगा. उन्हें इस बात से खुशी है कि गुप्ता अदालत में तलाक के लिए अर्जी दे चुका है. जेल में सुकीर्ति से मिल आने की इच्छा होती है. मगर कई कारणों से दबाये रखते हैं.

रोहित कई दिनों से उन्हें नहीं मिला है. कहीं जेल तो नहीं चला गया है? संघर्ष-समिति के तमाम लड़के फरार हैं. पुलिस उनके पीछे वारंट लेकर दौड़ रही है. डॉ. सिन्हा की ओर से छात्रों में फूट डालने की साजिश जारी है. तटस्थ होते हुए भी डॉ. अतुल ने उनकी पीठ ठोंक दी है.

"इतने दिनों तक कहां थे, रोहित?" हठात् उसे देखकर डॉ. अतुल उछल पड़ते हैं.

"पुलिस से छिपता चल रहा हूं, सर."

"बैठोगे नहीं? यहां पुलिस का भूत भी नहीं आ सकता है."

"एक जरूरी काम से प्रो. गुप्ता के घर तक जाना है."

"क्या बात है?"

उनके यहां संघर्ष-समिति की बैठक चल रही होगी. मेरे वहां जाने के पहले पुलिस वहां पहुंच गयी तो अनर्थ हो जायेगा."

डॉ. अतुल आसमान से गिरते हैं. तब क्या सुकीर्ति के साथ उसका मेल हो गया है? यह कैसे हो सकता है. गुप्ता के यहां छात्र-संघर्ष-समिति की बैठक? सातवां आश्चर्य है. वे पूछते हैं, "तुम वहां क्या करोगे?"

"मैं उन्हें पुलिस के पहुंचने से पहले भाग जाने के लिए कहूंगा."

रोहित तत्काल चला जाता है.

डॉ. अतुल दोनों हाथ परस्पर मलते जा रहे हैं. तब उनके 'कानूनी अलगाव' का क्या होगा? गुप्ता ने जेल में पत्नी से मिलकर समझौता तो नहीं कर लिया है. काश, नेताजी की बात सच हो जाती और डॉ. अतुल के लिए उपकुलपति का चांस इसी हवा में बन जाता. वे सुकीर्ति को किसी भी हालत में कॉलेज में प्रवेश नहीं करने देते. सुकीर्ति तड़प-तड़पकर सजा भोगे इसी में मजा है. उन्होंने कितनी लड़कियों को तड़पाया है. फिर सुकीर्ति की क्या बिसात? उसे तो चुटकियों में मसल सकते हैं. गुप्ता के साथ उसका मेल भी हो जाये तब भी क्या फर्क पड़ता है?

उनके दिमाग में एक नयी योजना आयी है. एक ही तीर से दो शिकार. हड़ताल तोड़ी जा सकती है और सुकीर्ति के घमंड को भी चूर किया जा सकता है.

गुप्ता के फ्लैट की सीढ़ियां चढ़ते समय उन्हें सन्नाटे का आभास होता है. उस दिन के बाद पहली बार आये हैं. उस दिन तो रात का सन्नाटा था. मगर आज दिन में कैसा सन्नाटा है. अरे, उस दिन सुकीर्ति का दिमाग ठीक होता तो मजा आ जाता. पता नहीं, साली को क्या हो गया था. अब खिलाफ में लेक्चर भी देती है. सुकीर्ति इतना कैसे बदल गयी है?

गुप्ता इस सन्नाटे में अकेला ही है.

"सुना, तुम्हारे यहां लड़कों की मीटिंग चल रही थी?"

"आपको कैसे मालूम, सर!"

"किसी न किसी तरह मालूम हो ही जाता है."

"आपके लिए चाय बनाता हूं."

"बिना औरत के घर अच्छा लगता है?"

गुप्ता ने चुटकी ली, "आपको मुझसे बड़ा अनुभव होगा, सर. पता नहीं, युनिवर्सिटी कैंपस के इतने बड़े फ्लैट में आप वर्षों से एकाकी जिंदगी कैसे बर्दाश्त कर रहे हैं."

"सुना है, सुकीर्ति भी कांति की तरह सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत ही गिरफ्तार हुई है?"

"इससे क्या अंतर पड़ता है?"

"चुनाव का प्रपंच शुरू होते ही हड़ताल-वड़ताल स्वतः ही हवा हो जायेगी. सुकीर्ति तब भी जेल में रह सकती है."

"यह बात आप किस आधार पर कह रहे हैं?"

"भइया, तुम लोग तो आंदोलनकर्ता हो. फिर भी मुझे सब कुछ मालूम होता रहता है. एक बात और, गुप्ता, मैं बहुत दिनों से कहना चाहता था हालांकि, सुकीर्ति वैसी लड़की नहीं है. मेरी छात्रा रही है. उसे मैं अच्छी तरह जानता हूं. मगर कांतिमोहन के साथ उसके गलत संबंध हैं, यह तुमने भी नहीं सुना?"

"आप ही के मुंह से पहली बार सुन रहा हूं." कुछ सोच-समझकर गुप्ता भी कहता है, "ऐसी अफवाहों का आंदोलन पर कोई असर नहीं होगा, सर. मैंने भी संकल्प कर लिया है, बच्चे भूखों मरेंगे तो मरें. मैं भी सुकीर्ति की राह पर ही चलूंगा."

"मतलब?"

"मैं भी जेल जाऊंगा."

डॉ. अतुल अवाक् गुप्ता का मुंह ताकते रहे हैं. □

अगले अंक में

क्या रोहित, डॉ. कांतिमोहन और उनके अन्य साथी जेल से छूट गये... ? क्या डॉ. अतुल ने चुनाव लड़ने का इरादा पक्का किया... क्या रोहित, दीपा, रामसिंह, सुकीर्ति डॉ. अतुल को कोई सबक सिखा सके... ? इन सब सवालों का जवाब देगी इस उपन्यासिका की आगामी और समापन किस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यक्षता

• इब्ने इंशा

लोगों को चाहिए अध्यक्ष, वह भले ही उस विषय की क ख ग तक न जानता हो. ऐसे ही लोगों ने एक बार घेर लिया इब्ने इंशा को. तब जो-जो गुल खिले, पेश है उनका एक नजारा——

"जी फरमाइए."

"हुजूर मैं हूं गुजराती साहित्य मंडल का सेक्रेट्री तार मुहम्मद दुखिया. हम गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री गबगब घड़ियालवी की बरसी मना रहे हैं. आप अध्यक्षता कीजिएगा?"

"दुखिया साहब, हम इंकार करके आपको और दुखिया तो बनाना नहीं चाहते, लेकिन गुजराती हम नहीं जानते और गबगब साहब का नाम भी आज ही सुना है."

"जी यह कोई बात नहीं है. आपने सुना होगा, पिछले दिनों ब्रोही साहब ने उर्दू के मशहूर शायर इकबाल की शायरी पर एक बढ़िया भाषण दे डाला और इसके बाद फरमाया कि साहबो, मैं न उर्दू जानता हूं, न फारसी!"

"लेकिन हर कोई ब्रोही साहब तो नहीं हो सकता कि जिस चीज के बारे में कुछ न जानता हो, उस पर भी बढ़िया भाषण दे डाले."

"लेकिन जी, बेगम नून ने तो इकबाल दिवस और बंगला कवि नजरुल इस्लाम दिवस के मिले-जुले जलसे की अध्यक्षता कर डाली और बड़ा मार्मिक भाषण दिया."

"भाई, हम उन्हें नहीं जानते. क्या पता वह उर्दू, फारसी, बंगला वगैरह की विद्वान हों."

"जी नहीं, उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मुझे ये भाषाएं नहीं आतीं और मैंने इन शायरों को पढ़ा भी नहीं, लेकिन इतना मालूम हुआ है कि करने पर बहुत जोर दिया करते थे. सो ऐ उपस्थित लोगो, तुम भी करने पर कमर कस लो, हाथ पर हाथ धरे मत बैठे रहा करो."

"भई, हम बहुत व्यस्त हैं. हमें माफ करो."

"आप नाहक घबराते हैं इंशा साहब, घबराइए नहीं. यों तो आपको मालूम है, ऐसे मौके पर क्या कहा जाता है. कहीं आप रुकें तो यह बंदा लुक्मा देने को तैयार है; यह तो मैं आपके कान में बता दिया करूंगा, आप पानी पीने के बहाने सुन लें या पर्ची लिखकर बढ़ा दिया करूंगा."

हमने कहा, "अच्छा भई, आप मजबूर करते हैं तो मंजूर, वर्ना हमारा अब भी यही खयाल था कि . . ."

जनाब तार मुहम्मद दुखिया ने हमारे गले में गोटे का चमकीला हार डाला, जो शायद इससे पहले कई अध्यक्षों के गले का हार हो चुका था और इसके अतिरिक्त कई मंगनियों और शादियों के मौके पर भी इस्तेमाल हो चुका था. और इसके बाद हमारा और हमारी विद्वता और ज्ञान की विशालता का जिक्र किया और कहा कि यद्यपि इंशा साहब गुजराती भाषा नहीं जानते और यह भी सच है कि गबगब साहब का किसी और भाषा में अनुवाद नहीं हुआ तो भी वे स्वर्गीय गबगब साहब के काव्य और विचारों पर बड़ी गहरी नजर रखते हैं. उन्होंने बेहद व्यस्त रहते हुए भी यहां पधार कर हमारा मान रखा है. अब मैं इंशा साहब से प्रार्थना करता हूं कि अध्यक्षीय भाषण शुरू करें.

"साहबो, जनाब गबगब घड़ियालवी को कौन है, जो नहीं जानता. पाकिस्तान के लिए की गयी उनकी सेवाओं को कभी भुलाया नहीं जा सकता. सेक्रेट्री ने पर्ची दी——'इनका स्वर्गवास तो 1914 में हो गया था.' हालांकि वह पाकिस्तान बनने या पाकिस्तान की योजना पेश होने से बहुत पहले 1914 की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आ गये थे. कान फुसफसाहट: उनका देहांत मलेरिया के कारण हुआ था, लड़ाई में नहीं. हमारा मतलब है कि 1914 की जंग के दिनों में एक जानलेवा बीमारी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए.

"हम जब उनकी शायरी का अध्ययन करते हैं. पर्ची : शायर नहीं उपन्यासकार थे. जिसको गालिब की तरह वह इज्जत का जरिया नहीं समझते थे और उनके उपन्यासों की लंबी सूची पर नजर डालते हैं. पर्ची : उन्होंने एक बड़ा उपन्यास लिखा था——'चूहेदान'. कई में से सिर्फ यह छपा. बाकी या तो छपे ही नहीं और अगर छपे तो चूहों ने खा लिये . . . तो उनकी महानता के आगे हमारा मस्तक झुक जाता है. उनके रचना कौशल का पता लगाना हो तो एक नजर उनके उपन्यास 'चूहेदान' पर डालनी काफी है (पर्ची : चूहेदान नहीं 'चमनिस्तान')

वाकई पर्ची पर चमनिस्तान लिखा था, हम 'चूहेदान' पढ़ गये.

"घड़ियाल, जिसके कारण वह घड़ियालवी कहलाये, एक मशहूर कस्बा है. फिर पर्ची आयी : घड़ियाला कोई कस्बा नहीं; गबगब साहब के बुजुर्ग शाही दरबार में घड़ियाल बजाया करते थे. यह बात एक प्रसिद्ध आलोचक ने अपने एक लेख में लिखी है. उसे पढ़कर हमें बड़ी हंसी आयी, क्योंकि घड़ियाला नाम का कोई कस्बा नहीं.

सेक्रेट्री साहब ने पर्ची दी कि 'गबगब साहब अंधे थे', लेकिन यह वक्त के बाद आयी थी. इसलिए इसे हमने एक तरफ डाल दिया और पानी का एक और गिलास पीकर तालियों की गूंज में बैठ गये. □

● **उर्दू से संक्षेप : लक्ष्मीचंद गुप्त**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधेरी गली का सफेद मकान

• बाला दुबे

लगातार अभावों की आग में जल रहे लोगों की जिंदगी में कैसे-कैसे मंजर आ खड़े होते हैं... कभी सोचा है आपने! ... बहुत मुश्किल होगा यह सोचना कि एक बेटा अपनी चंद जरूरतों के लिए अपने बाप की हत्या कर दे!... और फिर लाश को लेकर चल दे बेचने!... टूटती हुई जिंदगी के यथार्थ से साक्षात करवाती कहानी कि एक आदमी को दूसरा आदमी लाश ही क्यों नजर आने लगा है!

आंख मींडता हुआ मल्लू अपनी झोंपड़ी से बाहर निकला तो उसे आज की सुबह भी मैली-मैली-सी लगी. मनहूस दिन की सुबह मैली नहीं तो क्या कहीं उजली होती है! उसने बिसुआ को एक भद्दी-सी गाली देकर पुकारा. घुटनों तक चीथड़े हुई धोती की लांग लगाता हुआ बिसुआ उसी की ओर बगटुट चला आ रहा था.

"कहां मर गया था हरामी?" मल्लू चिंघाड़ा, "साला गजरदम से ही खिसक जाता है." बिसुआ ने सहमते हुए कहा, "भरतू का छप्पर पड़ रहा है काका. जरा हाथ लगवाने उसने बुलवा लिया था." मल्लू का गुस्सा सहसा आश्चर्य की धुंध में खो गया, "भरतू का छप्पर? क्या नया छप्पर डलवा रहा है वह?" मल्लू का गुस्सा काफूर होने लगा.

"हां काका, बिल्कुल नयी फूंस का छप्पर." बिसुआ हिम्मत करके बोला.

मल्लू सोच में पड़ गया. भरतू ने नया छप्पर कैसे डलवाया. कहां तो एक रोटी के लाले पड़े रहते थे और आज ससुर नया छप्पर पड़वा रहा है! यह सोचते-सोचते वह बैठ गया. दरसनिया ने कितनी बार उससे कहा था कि छप्पर छलनी हो गया है. बरसात में तो ऐसी टिपर-टिपर होती है कि रात भर इस कोने से उस कोने में फिरा करते हैं जैसे कोई शतरंज की बिसात पर घर बदल-बदलकर मोहरे चल रहा हो. पैसों का तो सारा खेल ही है मैया. पिछले महीने जब दरसनिया ने उसे इशारा दिया था कि बीरा की बिटिया किशनो और बिसुआ को उसने अक्सर कछार पर हंसते-बतराते देखा है, तब मल्लू को भी एहसास हुआ कि उसकी झोंपड़ी बिना बहू के कितनी सूनी-सूनी-सी लगती है, पर शादी ब्याह के सपने भी तो सुसरे पसों की नींव पर टिके होते हैं. मल्लू ने फिर मीजान लगाया था और दरसनिया को समझाया भी था, 'बिसुआ अब जान-जवान हो गया है, पर करूं क्या. पांच-छह सौ की जुगाड़ लग सके, तब कहीं बिसुआ की भामरें पड़ें.'

गंगा किनारे खड़े बड़ की उरली तरफ वाला मुर्दघाट का हिस्सा मल्लू का ही था. मरघट भी तो तीन हिस्सों में बंटा हुआ था. डोमों की छोटी-सी जागीर ही थी वह मुर्दघटा. फिर जब कोई लाश गांव से आती, तब मल्लू उन्हें आवाज देकर फुसलाता, 'इधर आ जाओ भैया सिरफ एक मन लकड़ी में मिट्टी भसम हुई जायेगी.' यह सुनकर अर्थी के साथ आये सब लोग ही उसकी तरफ मुड़ पड़ते. एक मन लकड़ी में ही काम हो जायेगा? लकड़ी इतनी मंहगी थी कि दस मन खरीदना किसी का बूता नहीं रहा था. एक मन लकड़ी की चिता बनाकर फिर मल्लू कहता, 'मिट्टी बड़े ल्हास-लंगड़-वाली है, भैया. कहो तो कुछ अधजली लकड़ी भी चुनवा दूं चिता में. आधे दाम में ही काम हो जायेगा.'

मृतक के परिवारवाले पहले एक-दूसरे का मुंह ताकते, फिर मान जाते. आठ-दस रुपये चाहे और फालतू लग जायें, पर मिट्टी पलीद न हो, जानेवाले की.

मल्लू फिर अपने बेटे बिसुआ को पुकारता, 'ओ रे हो बिसुआ. तनिक अधजले चेले ले आ रे.' और बिसुआ ढेर सारे अधजले लक्कड़ उठा लाता.

चिता में आग लगते ही फिर मल्लू परिवारवालों से कहता, 'अब भले ही तुम लोग जाओ भैया. कब तक बैठोगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन भर के भूखे-प्यासे भी होंगे. जब तक लाश राख नहीं बन जायेगी, तब तक हम यहीं बैठे रहेंगे. चिंता मत करो, सब काम कायदे से ही होगा. कल्ल शाम को भसमी ले जाना.'

और परिवारवाले मान जाते. उनके ओझल होते ही फिर बाप बेटे गंगा जल में भरे कनस्तर उठा लाते, जो पास की झाड़ी में छिपे रहते. छन्न, छन्न! चटखते मांस पर पानी पड़ते ही कैसी डरावनी आवाज होती. मल्लू और बिसुआ को फिर लाश की इतनी परवाह थोड़े ही होती, उन्हें तो लकड़ियों की फिकर होती. जितनी भी जलने से बच जायें उतना ही अच्छा है. बुझी लकड़ियों को वे फिर दूरवाली झाड़ी में छिपा देते. मल्लू और बिसुआ मुंह पर साफी बांध, फिर अधजली लाश की टांगें पकड़े घसीटते. जगह-जगह से जले हुए मांस के लोथड़े घिसटने से टूट-टूटकर जमीन पर गिरते जाते. इस तरह लाश को घसीटते हुए उसे गंगाजी में फेंक देते. अब बाप-बेटा मैले पानी में हाथ धोकर अपने चेहरे को धोते. 'हरि ओम' मल्लू कहता, 'काम खतम हुआ. ऐसा करिओ बिसुआ, कनस्तर में रखी भसम को कल इसके घरवालों को दे दीजो.'

यह था धंधा मल्लू का. गंगा किनारे से दो फर्लांग दूर पर ही डोमों का गांव था–नकटिया. दूर से डोमों की झोंपड़ियां बरसाती कुकुरमुत्तों की तरह उग आयी थीं. मुश्किल से बीस घर होंगे डोमों के.

और आज बिसुआ कह रहा है कि भरतू की झोंपड़ी पर नया छप्पर पड़ रहा है. यह सोचकर कि आनेवाली बरसात में भरतू अपनी झोंपड़ी में चैन से सो सकेगा. मल्लू एकदम तड़प उठा. अरे, जब सब दुख सह रहे हैं, तब भरतू ही अकेला क्यों सुखी रहे? मल्लू की फिर बेचैनी ने ऐसा दबोचा कि वह सीधा भरतू के द्वारे जा पहुंचा. कान में लगी बीड़ी को सुलगाकर मल्लू ने पहले सात-साठ कश खींचें और फिर अधमरी बीड़ी भरतू को पकड़ाते हुए खुश होने का स्वांग भरता हुआ बोला, "चलो, यह बड़ा अच्छा कारज कर डाला तूने भरतू. कम से कम अबकी बरसात में तो बच्चे सुखी रहेंगे."

भरतू को यह सुनकर खुशी हुई कि मल्लू को और डोम भाइयों की तरह उसका छप्पर बदलना अखरा नहीं. और जब भरतू अंदर से अनन्नास का पौधा और मिट्टी की कुलियां लेकर आया, तब तो मल्लू के सीने में इतनी जलन हुई मानो कोई उसके हिरदै को निकालकर भट्टी में सेक रहा हो, पर मल्लू ने वैसे अपनी ईर्ष्या पर मुस्कराहट का ऐसा मुलम्मा चढ़ाया कि भरतू उसके अंतरमन की कालौंछ भांप नहीं सका. फिर कुरेदने की नीयत से ही उसने भरतू से पूछा था, "लगे है तेरी तरफ बहुत सारी अर्थियां आ गयी अबकी दफे."

भरतू ने बात को टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा, "सब काली मैया की किरपा है भैया. जब वह देती है तो छप्पर फाड़कर देती है."

मल्लू अनन्नास की चुस्की लगाता हुआ मन ही मन बोला, 'छप्पर फाड़कर ही नहीं, नया छप्पर भी तो दे रही है काली मैया. पर साले ने इतनी रकम जुटायी कहां से?' मल्लू इसी सोच में डूबता रहा.

दो कुलियां देशी पीकर मल्लू वापस चल दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी देर तक मल्लू करवटें बदलता रहा था. ना जाने उसे कब नींद ने आ दबोचा था. फिर उसे सपने में छप्पर ही छप्पर नजर आये थे. सपने में उसने एक सुनहरी रंग का छप्पर चुना था, जिसे वे दोनों बाप-बेटे बिदेसिया गा-गाकर बांधते जा रहे थे. सहसा छप्पर जोर से नीचे गिर पड़ा उसके बीमार बाप सलगा के ऊपर. मल्लू घिघिया के चीखा था और तभी नींद टूटी थी. गर्म-गर्म पसीने की लकीरें उसके चेहरे पर रेंग रही थीं. जैसे गीली जमीन पर अलसाये सांप रेंग रहे हों. वह भड़भड़ाकर उठा था तब. उसने फिर याद किया. . .कौन-सी आखिरी लड़ी थी उसके सपने की.

मल्लू चलता जा रहा था. और तभी उसने धारा के अंदर किसी को जाल डालते देखा था. . . छपाक्.

अरे, यह तो भरतू है! मल्लू तभी पास पड़े पत्थर की ओट में बैठा था. यह क्या पकड़ रहा है सवेरे-सवेरे? उचक-उचक कर देखता रहा मल्लू. भरतू ने चाल में कुछ फांस लिया था शायद. मल्लू ने दोबारा उचककर देखा.

भरतू डंडे से चारों ओर लपकते कछुओं को भगाता जाता था. लाश को बोरी में रखकर फिर वह मंडवा की ओर चल पड़ा था. मल्लू भी सांस रोके पीछा करता रहा. मंडवापुर पहुंचकर ही मल्लू सब कुछ जान पाया था. भरतू ने नुची-खुतरी लाश उस शहरी बाबू को दी थी, जिसने उस गांव के छोर पर पक्के मकान का दरवाजा खोला था, "अरे इसकी भी एक टांग गायब है." बाबू बोला.

"का करी हजूर." भरतू गिड़गिड़ाकर बोला, "गंगा मैया में लाश डालते ही कछुए ऐसे टूटते हैं कि कहा बताई."

"तू तो साल भर से झांसा दे रहा है कि पूरा का पूरा ढांचा लाकर देगा." वह बोला, "अबे मैं पूरे ढांचे के तुझे तीन सौ रुपये दूंगा. . .नकद, पर जल्दी ही जुगाड़ कर उसकी."

मल्लू ने अपने ओठों पर जीभ फेरी. तीन सौ रुपये? इतनी बड़ी रकम. वह फिर पशोपेश में पड़ा था. हड्डियों के ढांचे की इतनी कीमत? भरतू के चले जाने के बाद भी मल्लू वहीं छिपा रहा.

"खैर, इस ढांचे के टुकड़े तो एनाटॉमी के मेडीकल स्टूडेंट ले लेंगे, पर मैंने अस्पतालवालों से वादा कर रखा है कि मैं पूरा का पूरा कंकाल सप्लाई कर सकता हूं."

मल्लू अब समझ गया था. उसे याद था कि जब वह एक दिन भागलपुर के अस्पताल इमरतिया की चाची को देखने गया था, तब वहां शीशे के बक्से में एक कंकाल रखा था—पांव से सर तक—समूचा.

मल्लू ने फिर अपने होठों पर जीभ फेरी. तीन सौ रुपये! तीन सौ रुपये! तीन सौ में तो झोंपड़ी, कपड़े-लत्ते, दो जून की रोटी...सब कुछ जुट जायेगा रे मल्लू! और कहीं दो ढांचे हाथ लग जायें तब तो बिसुआ का घर भी बस जाये. अरे फिर तो दरसनिया को भी कुछ चैन मिले चढ़ते हुए बुढ़ापे में. फिर मल्लू ने झुककर अपनी छलनी फटी हुई धोती को देखा. दो साल पहले तक बोहरे ने उस धोती को अपने बाप की लाश को पहनाया था. उसे ही उतारकर मल्लू तब से पहन रहा है. और अब वह तार-तार हो चली है.

बड़ी हिम्मत जुटाकर फिर मल्लू ने दरवाजा खटखटाया था. शहरी बाबू के आगे हाथ जोड़े मल्लू घिघियाकर बोला, "हजूर, हम भी डोम हैं. . .नकटिया के हैं हजूर. आपको हम पूरा का पूरा ढांचा दे सकते हैं. सरकार ये भरतू जो है, यह तो सात जनम में भी ढांचा नहीं दे पायेगा. अब हुक्म करें तो हम जुगाड़ करें."

पहले तो उस बाबू ने शंका से उसे देखा, फिर कहा, "क्या है तेरा नाम?" सहमा हुआ मल्लू बोला, "मल्लू डोम, मरघट की उरली तरफ का हिस्सा मेरा ही है."

दो क्षण को बाबू और सुलेमानी ने एक-दूसरे की तरफ देखा और फिर बाबू बोला,"अच्छा, तो तू भी कर ले कोशिश ढांचा कहीं से भी टूटा नहीं हो, समझे. तीन सौ रुपये दूंगा. . . नकद."

मल्लू अब उसके पांवों पर गिरते हुए बोला, "मंजूर है हजूर, मंजूर है. फिर हम जायी सरकार. भगवान ने चाही तो जल्दी ही आपका माल लेकर आयी. अरे, हम तो समूची ल्हास ही ले आयी सरकार."

लाश की बात सुनकर बाबू चौंका. फिर सोचकर बोला, "पर लाश लावारिस हो, समझे? मैं किसी झमेले में नहीं पड़ने का. अरे हां, कल को तू कोई ऐसी लाश ढो लाये, जो यहां बवाल खड़ा कर दे."

अरे नाहीं हजूर!" मल्लू दांत निपोरकर बोला, "हम कोई नादान हैं का? ऐसी ल्हास लायी जाका कोई दावेदार ही नहीं होय. भला-झंझट झमेले में पड़कर का हम अपनी गरदन फंदा में डलिहैं!"

और मल्लू बार-बार सलाम करते हुए लौट पड़ा. मल्लू के दिल में संकल्प का अंकुर फूट चुका था. रास्ते भर वह खुद से बातें करता रहा. पूरी लाश ला, मल्लू पूरी की पूरी लाश. लाश नहीं कंकाल-सफेद हड्डियों का ढांचा, तीन सौ रुपये? ढूंढ़ मल्लू, कहीं से भी ला. . .कंकाल ला. मल्लू पागल जैसा हो गया. पूरी लाश, पूरा ढांचा, तीन सौ रुपये. रात को भी वह यही सोचता रहा, जोड़-तोड़ करता रहा. . . आंखों, खां, खों, खों. . .आंखों, खों, खों, खों, मल्लू चौंका हां, उसका बूढ़ा बाप खांस रहा था. तभी मल्लू का ध्यान उधर गया. लगा, उसका बाप-थोड़े दिन का मेहमान. अस्सी के आसपास की उमर तो होगी ही.

मल्लू को तभी फिकर लगी थी—कब तक जियेगा उसका बूढ़ा बाप सलगा. छप्पर तो एक-दो महीने में बदलना जरूरी है. और फिर भरतू ने भी तो बदल लिया है ना अपना छप्पर. कैसी शेखी मार रहा था उस दिन. बताओ तो साले ने अनन्नास की भी पिलवायी. हड्डियां बेचता है, हरामी. . . हड्डी चोर.

मल्लू फिर स्वयं अपने को समझाता, इसमें क्या बुराई है मल्लू. ये तो धंधा है भैया. अगर शहर के 'डाकदर' लोग मरे हुओं की हड्डियों से डाकदरी नहीं सीखेंगे तो क्या जिंदों की हड्डियों से सीखेंगे. अरे छोड़ हड्डी-फड्डी, तू पूरे ढांचे की जुगाड़ कर, पूरे ढांचे की.

और फिर बरबस उसे अपने बाप सलगा का ध्यान हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया. बैदजी कह भी चुके हैं. साल छह महीने का मेहमान और समझो सलगा को. पर साल छह महीने भी ज्यादा हैं मल्लू. कुछ और पहले चल बसे तो कितना अच्छा हो! भला बताओ तो सही—तीन सौ रुपये नकद. . .अरे इतनी रकम में तो टब्बर का पूरा कायाकल्प हो जायेगा भैया. और मल्लू जब भी अपने बाप को देखता तो उसे झुरियों पड़े मांस में लिपटा सलगा नजर नहीं आता—उसे कंकाल नजर आता. . . तीन सौ रुपये का कंकाल. तीन सौ रुपये का सलगा. . .

वह वैद जी के पास पहुंचा था. अरे अगर भगवान सलगा को जल्दी नहीं उठा पा रहा हैं तो बैदजी ही अपनी जड़ी बूटी के जोर से सलगा को उठवा दें. फिर दुख की नौटंकी करते हुए मल्लू ने बैदजी से कहा था, "अब तो दादा की तकलीफ नहीं देखी जाती है बैदजी, पिछले हफ्ते जब दस्त लगे थे, तब हम लोग भी परेशान हो गये थे. इससे अच्छा तो भगवान उसे उठा ही ले. अरे महाराज, आजकल सही सलामत हाथ-पांव वालों को दो जून की रोटी नसीब नहीं हो पाती, तब मरे समान दादा को कहां तक खिलाऊं. बहुत देख ली दुनिया दादा ने. अब तो भगवान उसे उठा ही ले, सोई अच्छा है. उसकी भी मिट्टी संवरे और हम भी चैन की सांस ले सकें."

बैदजी ने भी मल्लू की बात पर विचार किया. वे मन ही मन बोले, वैसे कह तो ठीक ही रहा है मल्लू. भला बताओ मंहगाई-सी मंहगाई है! चने जलेबी के भाव बिक रहे हैं साले. कोई करे भी तो क्या करे! हे भगवान कहां जाकर रुकेगी यह मंहगाई. पर मल्लू को बड़े बूढ़ों की तरह धीरज बंधाते हुए बोले, "अरे भैया मल्लू, जितनी जो लिखाकर लायेगा, उतनी तो उसे काटनी ही पड़ेगी. सलगा भी उसके हुक्म बगैर यह चोला नहीं छोड़ेगा. उसके खाने-पीने का परहेज जरूर करते रहना. बाजरा और जौ उसे मत देना. बस यह याद रखना कि उसे फिर दस्त नहीं लगने चाहिए वर्ना फिर बच नहीं पायेगा सलगा."

और मल्लू ने यह सुनकर अपने कान खड़े कर लिये थे. बाजरा और जौ! दस्त लगने खतरनाक हैं. और तीसरे दिन सलगा को जो दस्त लगे तो रोके नहीं रुके. पचासवें दस्त पर बैदजी मल्लू की झोंपड़ी पर आये थे सलगा को देखने. नाड़ी देखते समय उन्होंने बड़ी मायूसी से अपना सिर हिलाया था. चौथे दिन सलगा की आंखें मिच गयीं.

निकटिया के डोम उस दिन मल्लू की चौखट पर उसे दिलासा देने आये थे. मल्लू वैसे नौ-नौ आंसू रोया भी था. मोटे-मोटे आंसू थे, धरती पर मानो कोई मगरमच्छ रो रहा हो. वह रोता भी जाता और अपने टूटे हुए छप्पर को देखता भी जाता. गयी रात बीते बड़े जतन से फिर मल्लू ने सलगा की लाश को फूंस के ढेर में दबाया था. बिसुआ डरा हुआ-सा उसकी मदद कर रहा था, "अबे किसी को कानों-कान इस बात की खबर नहीं लगे." मल्लू कहता.

सुबह होते ही बिरादरी के सब डोम उसकी देहरी पर इकट्ठा हो गये थे. . .सलगा को मरघट जो ले जाना था, पर मल्लू दरवाजे पर बैठा-बैठा बोला, "मैं दादा को रात के बखत ही गंगा जी में फेंक आया.

चढ़ते अंधियारे में फिर मल्लू अपने सलगा की लाश को बड़ी होशियारी से लेकर चला था. पीठ पर बोरी बड़ी सावधानी से रखी थी उसने. बिसुआ उसके साथ-साथ चल रहा था. गांव पार करके उसने चैन की सांस ली.

वह बिसुआ को समझा रहा था, "दादा कितना अच्छा था रे बिसुआ. मरकर भी वह हमको पचा. अरे, अगर हम उसे जला देते या गंगा मैया में फेंक देते, तब भी क्या होता? वो शहरी बाबू मरे हुए दादा के तीन सौ रुपये दे रहा है. तीन सौ, मरी ल्हास के तीन सौ क्या बुरे हैं बेटा?"

बिसुआ तब अपनी फटी-फटी आंखों से सुनता रहा, मल्लू की यह बात. थोड़ी दूर बाद मल्लू ने फिर चुप्पी तोड़ी, "बिसुआ रे, तेरी धोती भी बहुत फट गयी है. आज तुझे नयी धोती भी ले दूंगा." बिसुआ कुछ नहीं बोला. एक बार फिर चुप्पी रंग गयी बाप बेटे के बीच. मल्लू फिर बोला, "तैंने कभी हलुआ खाया है रे बिसुआ?" फिर अपनी जीभ अपने सूखे ओठों पर फेरता हुआ बोला, "क्या चीज है हलुआ भी. आज हम दोनों हलुआ खायेंगे." बिसुआ हलुए के बारे में अनुमान लगाने लगा. शायद किसी रोटी को कहते होंगे. घर पर तो रोटी कितनी रूखी होती है. . .रोटी कहां, टिक्कड़ कहो टिक्कड़. रोटी तो सुनते हैं मुलायम-मुलायम होती है. गरमागरम नरम और घी से खूब चुपड़ी हुई.

बिसुआ कुछ बोला नहीं. उसके दिमाग में तो और ही तूफान जो उठ रहा था. भला बताओ, मरे हुए दादा की मिट्टी तक बिक गयी इस जमाने में? तीन सौ रुपये मिलेंगे इस लाश के?

उधर मल्लू अपनी पीठ पर अपने बाप की लाश लादे ना जाने क्या-क्या मंसूबे बनाता चल रहा था. धोती. . . हलुआ. . . . छप्पर . . . नयी फूंस का छप्पर. . . बिल्कुल भरतू जैसा. . . तभी बिसुआ को किशनो की याद ने झिंझोड़ डाला. छह सौ रुपये आ जायें तो किशनो उसके पतझड़ को वसंत बनाने आ जाये. छह सौ रुपये. . . यानी दो जगह तीन-तीन सौ रुपये. . . अरे सीधा हिसाब है—दो लाशें.

फिर बिसुआ ने बड़े गौर से अपने बाप मल्लू को घूरा. उसे लगा मानो मल्लू की लाश ही उसके दादा की लाश ढोकर उसके आगे-आगे चल रही है. □

● एफ-48 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

चलते-चलते

रेल चलने को तैयार थी. गार्ड ने प्लेटफार्म पर खड़े एक यात्री से कहा, "जल्दी कीजिए श्रीमान, गाड़ी छूटनेवाली है."

"अच्छा, मैं जरा अपनी बेटी को प्यार तो कर लूं." बेटी को विदा करने आया पिता बोला.

गार्ड झुंझलाकर बोला, "ओह, यह काम मैं किये देता हूं, आप अंदर जाकर बैठें.

—नरेश कुमार बंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरादास की डायरी

उत्तर प्रदेश का कीर्तिमान

इस देश में उत्तर प्रदेश एक ऐसा प्रदेश है जिसके अपने कीर्तिमान हैं. कीर्तिमानों की गिनेस बुक तब तक अधूरी रहेगी जब तक उसमें यह प्रदेश शामिल नहीं किया जाता. इस प्रदेश को दरअसल कीर्तिमानों का पुंज कहा जाना चाहिए. इस पुंज में अभी एक कीर्तिमान और जुड़ा. एक रेलगाड़ी में डकैती पड़ी और डकैतों ने मंत्री सहित उन विधायकों को भी लूटा जो उसमें सफर कर रहे थे.

किसी समय इसी प्रदेश में छविराम नाम के एक महापुरुष हुए थे. जब वे डकैती डालने आते थे तो लोग नारा लगाते थे—नेताजी जिंदाबाद. वे सफेद खादी के कपड़े पहनते थे. और गले में फूलमाला डलवाते थे. चारों और घूमकर जनता को नमस्कार भी करते थे. इसके बाद मनोहारी कार्बाइनों और राइफलों से उत्तम ध्वनि करते हुए बहुमूल्य गोलियां छोड़कर लूटपाट का आनंद उठाते हुए वापस चले जाते थे.

यह वही महान प्रदेश है, जहां एक बार एक दारोगा ने अपने रोजनामचे में यह सुखद-रपट दर्ज की थी कि उसके इलाके में अब मवेशियों की चोरियां कम हो गयी हैं क्योंकि मवेशियों का शातिर चोर "बसिलसिलए वजारत आजकल जिला लखनऊ में मुकीम है" (मंत्री होकर लखनऊ में रह रहा है.)

मवेशी चुराते आदमी मंत्री बन गया तो दारोगा ने इत्मीनान की सांस ली. मंत्री हुआ है तो अपने चुनाव क्षेत्र में नहीं रहेगा, राजधानी चला जायेगा.

एक रेलगाड़ी में डकैती पड़ी और डैकतों ने मंत्री सहित उन विधायकों को भी लूटा जो उसमें सफर कर रहे थे!—खबर पाते ही मथुरादास परेशान हो गये कि ऐसा क्यों होता है? पढ़िए—डाकू, पुलिस और नेता के समीकरण पर कटाक्ष करता डायरी का पन्ना—

होता ही यही है. चुनाव पूरा हो जाये तो आदमी का चुनाव क्षेत्र में काम भी पूरा हो जाता है. चुनाव क्षेत्र में कितने मवेशी होंगे? मंत्री होकर तो पूरा प्रदेश प्राप्त होता है.

एक बार शोर मचा कि विधान सभा में सैकड़ों विधायक हिस्ट्री-शीटर हैं. उनका हुलिया पुलिस में दर्ज है. ज्यादातर विधायकों ने अर्जी दी कि उन्हें अंगरक्षक चाहिए. आखिर अंगरक्षक उन्हें मिल गये. साथ में पिस्तोल बांधे अंगरक्षक न हो तो विधायक का शरीर सुरक्षित नहीं रहता. जनप्रतिनिधि है इसलिए उसे सुरक्षा तो चाहिए ही. मथुरादास सोचते रहे कि ऐसा क्यों होता है?

जनप्रतिनिधि को तो जनता चुनकर बाकायदा माल्यार्पण करके राजधानी रवाना करती है. फिर बाद में उसकी ठुकाई के चक्कर में क्यों रहती है?

अभी एक नाटक किसी और प्रदेश की विधान सभा में हो गया. एक विधायक रोता हुआ अध्यक्ष के पैरों से लिपट गया और कहने लगा कि उसकी जान बचायी जाये.

जिससे जान बचवाना चाहता था वह भी वहीं मौजूद था. उसने कहा—मुझसे इनको कोई खतरा नहीं. विधायक फिर भी रोता रहा और जान की भीख मांगता रहा.

वह जरूर भोंदू विधायक रहा होगा वरना वह जान की भीख के बजाय एक अदद कार्बाइन का लाइसेंस मांगता. इसके बाद वह भी खुलकर रहता और मारनेवाला भी. उत्तर प्रदेश में यही होता है. यहां विधायक रोता नहीं है. रोता सिर्फ वो है जो मवेशी पालता है.

तो बात चल रही थी ट्रेन में मवेशियों के नहीं, मंत्री और विधायकों के लुटने की. मथुरादास को यह लगा कि अवश्य कहीं अनहोनी होने लगी है. नाई, नाई से हजामत बनवायी नहीं लेता पर डकैत ने मंत्री और विधायकों को लूट लिया और लूटा भी ठेठ देहाती तरीके से—तमंचा दिखाया, ललकारा और लूट लिया.

सरकार ने लाखों टन अनाज खरीदा. खरीद के लिए करोड़ों का भुगतान हुआ. पर सरकारी गोदाम को कोई कष्ट नहीं हुआ. वह खाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खाली पड़ा रहा. नैतिक दृष्टि से यह गोदाम की लूट हुई पर तकनीकी दृष्टि से कहें तो लूट नहीं हुई. गोदाम में आनाज आया ही नहीं. नहीं तो लुटता क्या? लूट फिर भी हो गयी. यह लूट-कला स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा है.

देहाती रहजन होता है तो वह चार लठैतों से यात्रियों को पिटवाकर उनका सत्तू छीन लेता है. यह स्थूल और इतिवृत्तात्मक कला है. कला की स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा हुई तो सड़क-लूट में गुणात्मक परिवर्तन आ गया. अफसर ने सरकार से कहा—लखनऊ से वाराणसी के बीच कोई सौ किलोमीटर सड़क टूट गयी है. गाड़ियों की दुर्घटनाएं होती हैं. जानमाल सुरक्षित नहीं है. सड़क बननी चाहिए.

सरकार अफसर से कहती है—उत्तम योजना है. जरूर बनवाओ.

सड़क पर फिर भी दुर्घटनाएं होती रहती हैं, गर्द और कीचड़ से बराबर लड़ना पड़ता है. जान-माल की सुरक्षा कतई नहीं होती, क्योंकि सड़क के बजाय इस बीच मंत्री, अफसर इंजीनियर और ठेकेदारों की चार सुंदर कोठियां बन जाती हैं. कोठियां बन जायें तो सड़क की मरम्मत जरूरी नहीं रह जाती. यह स्थूल से सूक्ष्म की ओर लूट-कला की यात्रा है.

लगता है इधर इस कला में जरूर शिल्पगत ह्रास हुआ है वरना इस बारीक लूट के युग में यह ठेठ गंवार लूट क्यों होती कि चार-पांच लोग ट्रेन में घुस आयें और तमंचा दिखाकर हल्ला मचाते हुए लूटपाट कर जायें. उत्तर प्रदेश में एक बार 'भारत भवन' बनने की घोषणा हुई थी. वह जल्दी बनना चाहिए. उसके बनने से कलाओं के विकास और परीक्षण में आसानी हो जायेगी.

हो सकता है कि कलाओं के विकास के लिए उत्तर प्रदेश को अशोक बाजपेयी खोजने में कठिनाई हो. पर यह तभी तक होगी जब तक भारत भवन बन नहीं जाता. एक बार बन जाये तो हर मंत्री के घर दो-चार ऐसे भतीजे निकल आयेंगे जो अशोक बाजपेयी बन सकें. मध्यप्रदेश के अशोक बाजपेयी ज्यादा से ज्यादा कुछ लिखते-पढ़ते हैं, यह विशेषता उनकी हो सकती है. उत्तर प्रदेश का अशोक बाजपेयी इस शर्त पर लेखन भी शुरू कर देगा कि उसे 'भारत भवन' की अध्यक्षता मिल जाये. बीससूत्री कार्यक्रम पर बयान वह इसके अतिरिक्त देगा, जो अशोक बाजपेयी कभी नहीं कर सकते.

'भारत भवन' बाहर से देखो तो लगता ही नहीं है कि वहां कोई इमारत बनी है. अंदर से देखो तो खासी बड़ी इमारत नजर आयेगी. उत्तर प्रदेश में यह कला और ज्यादा विकसित हो सकती है यानी इमारत वहां न बाहर से दिखे न अंदर से. सिर्फ उसका अध्यक्ष दिखे.

तो मंत्रीजी लुटे. यात्रा करते समय लुटे. मगर आप नैतिक सदाचार पर आवश्यक ध्यान दीजिए. उस वक्त वे न तो पिये हुए थे न ही किसी परिचारिका को छेड़ रहे थे. एकाग्रचित होकर यात्रा कर रहे थे.

डकैतों ने सोचा होगा कि मंत्री हैं, साथ में बहुत पैसा होगा. गांवों में डकैत आते हैं तो गोलियां दागते हुए सीधे साहूकार धन्नूसाह के घर पहुंचते हैं. उन्हें मालूम है कि धन्नूसाह ने गांव भर का सोना-चांदी गिरवी रख छोड़ा है.

डकैत निधड़क धन्नूसाह के घर घुस जाते हैं और प्रसन्न होकर लौटते हैं. क्या उन्होंने मंत्रीजी को भी माल गिरवी रखनेवाला धन्नू समझा था?

मथुरादास का दावा है कि सारी गड़बड़ी की जड़ प्रथम श्रेणी की बोगी है. डकैत समझते होंगे कि पहले दर्जे में बहुत धनी लोग चलते हैं. डकैतों को पता होना चाहिए कि पहले दर्जे में ज्यादातार वे लोग चलते हैं जिनकी औकात खुद पहले दर्जे का टिकट लेने की कभी नहीं होती. उसमें वे लोग चलते हैं जिनका टिकट सरकार देती है या रेलवे बोर्ड. कभी-कभी उसमें कोई ऐसा बुद्धिजीवी भी चलता है जो सम्मेलन के आयोजनों को तीन प्रथम श्रेणी के किराये देने के लिए पटा चुका होता है. आप कहेंगे यह प्रथम श्रेणी के तीन किराये क्या हुए? बताता हूं. एक जाने का एक वापसी का और एक टिकट का पैसा रास्ते में चाय पीकर बीवी के लिए साड़ी लाने का.

खैर, तो बात चल रही थी ट्रेन में मंत्रीजी के लुटने की. मंत्रीजी को डकैत ने लूट लिया, यह समाचार बना क्यों? मथुरादास ने पत्रकारिता की किताब में पढ़ा था कि यदि कुत्ता आदमी को काटे, यह खबर नहीं बनती. खबर तब होती है जब आदमी कुत्ते को काटे. अब पत्रकार आखिर इसे खबर बनाकर कहना क्या चाहते थे कि डकैतों ने मंत्री को लूटा! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

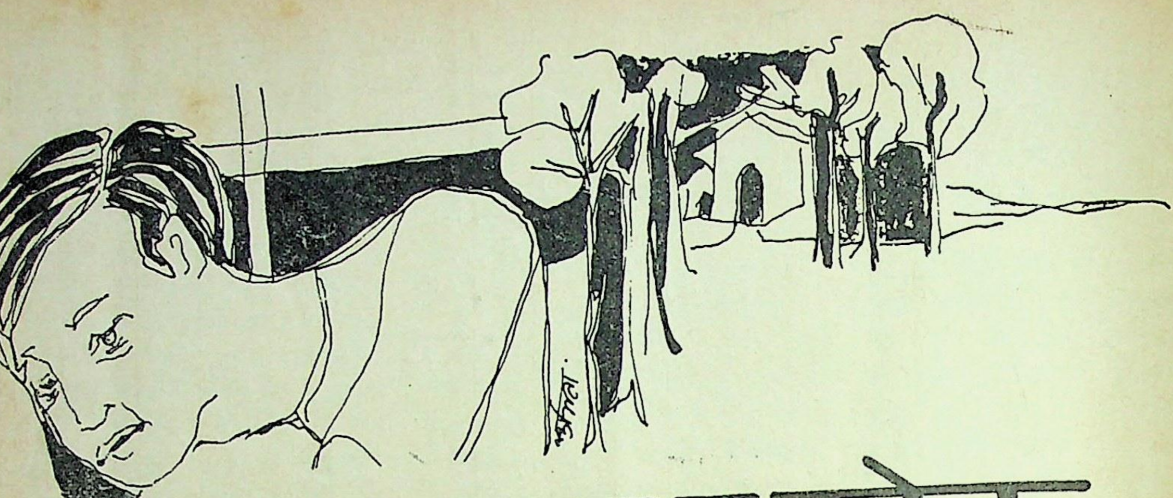

उतरा हुआ कोट

• यश गोयल

शीर्षक पढ़कर ही आप समझ गये होंगे कि आगे की कहानी क्या होगी! मगर यह क्या सही है, जो हम-आप देखकर, पढ़कर या सुनकर जान जाते हैं ––वही सच होता है? ये प्रश्न आप से ही पूछ रहा था. सवाल इस वक्त उतरे हुए कोट का अवश्य है, मगर हमारी आपकी जिंदगी में कितनी जिंदगियां ऐसी है, जो उतरी हुई नहीं हैं या उतारी हुई नहीं हैं. ये ही नहीं—चेहरे, रिश्ते, संबंध, संबोधन क्या सभी उतरे हुए नहीं लगते आपको.

मेरे शरीर के अंगों ने भी साधारण रूप से यौवन की ऊर्जा को सोखा था. चेहरे को कंटीली-सी दाढ़ी ने घेर लिया था. होंठ के ऊपर बालों की बेतरतीब क्यारी बन गयी थी. आंखों पर कांच की पर्त चढ़ गयी थी. दो मुंह बालों में कंघी उलझने लगी थी. हाथ-पैर बदन में कपड़े-से अंगरखी पर लटके-से रहने लगे थे. वह परिवर्तन अस्थायी होते हुए भी कालजयी प्रतीत होने लगा था. इन सब स्थायित्वों के बाद मेरे पास शीत लहर को दूर से ही छुआकर भगाने का गर्म कोट न था न ट्वीड था, न ही सूट था.

मुझे अच्छी तरह याद है. स्कूल के दिनों में खाकी नेकर पर लंबी एवं बांहवाली सफेद किंतु पीली हुई कमीज को खींच-खींचकर शरीर ढांपा करता था. स्कूल प्रार्थना-सभा की लाइनों में बीच में खड़ा हुआ करता था. आजू-बाजू में, आगे-पीछे की तरह कतारें हुआ करती थीं, गर्म-गर्म रंग-बिरंगे कोटों की. स्कूल के दरवाजे, मेरे जीवन में, कालिज में न खुलकर रोजगार कार्यालय से जुड़े थे. रोजगार भी मिला मगर नया कोट नहीं मिला.

आते हुए लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा कोट, जिसे पहनकर जेंटलमैन की संज्ञा दी जा सके. विशेष सभाओं, रेस्ट्रांओं, क्लबों, पार्टियों में पहनकर जाने पर इंटेलेक्चुएल से संबोधित किया जाता हो. क्लबों में, फिल्म देखकर अंदाजा लगाता हूं, किस तरह डांसर या पूंजीपति की लड़की कोटवाली बाजू थामकर, अपने पैरों की ताल का साथ दिल से देती है. दो जोड़ी बढ़ते, मिलते, सटते शरीरों का रहस्य कोट नहीं तो क्या है. पैदल हो या बस, ट्रेन हो या हवाई जहाज, कोटवाले को प्राथमिकता तो दी ही जाती है. कोट से मेल खाती कांट्रस्ट टाई हो, उसी रंग की गर्म पैंट हो तो सोने में सुहागावाली कहावत चरितार्थ कर देंगे लोग. बिना 'क्यू' में लगे फिल्म के टिकट के लिए किसी बाला या नारी से निवेदन किया जा सकता है. 'एक्सक्यूज मी' कहकर दीर्घा को चीरकर आगे तक निकला जा सकता है, बशर्ते कि आपके दोनों हाथ कोट की जेब में जा रहे हों! उंगली के पोर स्त्री दीर्घा को स्पर्श करने का सुख देते हुए निकलें.

आप अब तक पढ़कर अंदाजा लगा चुके होंगे कि मेरी मानसिकता कितनी संकीर्ण है. कोट जैसी अल्प चीज इतना महत्व रखती है जीवन में. तो जनाब, यह कमी क्यों है मेरे जीवन में, ये आपने नहीं सोचा होगा. मैं तो केवल सर्दी में कोट के लिए तरसता हूं. लोग तो भीषण गर्मी में भी वाता-

सामने पैंट उतारकर दिखाने का 'विक्टर' भी नहीं था मेरे पास.

मगर मेरा रुदन सुननेवाला कोई नहीं था. या तो 'मैं' का अस्तित्व नहीं था या रुदन नहीं था या दोनों में तारतम्य नहीं था. वर्षों तक मैं वही रहा, उतरा हुआ-सा. डबल ब्रेस्ट कोट वही था. हां, हर सर्दी आने से पूर्व, पतझड़ से सावन की तरह मेरे बटन जरूर बदल जाया करते थे. जिंदगी की तरह काज ढीले हो गये थे, जिसमें बटनों ने अटकना छोड़ दिया था. जिंदगी भी इसी तरह निकलकर घर की चारदीवारी और तथाकथित पत्नी की देह से छूटकर घूमती रही, रिश्तों, संबंधों और परिचितों के चालू, साधारण, विशिष्ट आयोजनों में, अपने उतरे हुए कोट को चढ़ाये.

अब आप ये भी पूछने का हक बना लेते हैं—भई, ऐसी तो आपके यहां कड़की नहीं होगी कि अपनी पसंद का एक नया, सस्ता-सा कोट न बनवा लें. छह-सात माह की तनख्वाह में से बचत न सही, एडवांस लेकर बनवा सकते थे?

तो भाई साहब के शुभचिंतकों, आपकी ये बात तभी फिट बैठती, अगर हमारे दो-दो काज-बटन से नन्हें-नन्हें काज-बटन न बने होते. वर्ष, दो वर्ष के अंतराल से हमें (मेरी पत्नी को भी) लगने लगा कि उसके ब्लाउज के बटनों को काज की

क्लर्कों का जीवन भी क्या जीवन है! अभाव के मारे ये बेचारे किन-किन चीजों के लिए नहीं तरस जाते और हम हैं कि उन पर न जाने क्या-क्या तोहमत लगाते रहते हैं. प्रस्तुत है एक क्लर्क के जीवन की अंतरंग कथा, नये रचनाकारों के अपने स्तंभ 'आते हुए लोग' की तैंतीसवीं कड़ी

नुकूलित-से ठंडे कोट को पहनकर शापिंग करते हैं. मैं यह सब यूं ही नहीं सोच रहा. मैं ऐसा उस वक्त सोचता हूं, जब मुझे कहीं विशिष्ट कार्य से या मेहमान बनकर जाना होता है. वैसे मेरे अंदर न विशिष्ट बनने की मानसिकता है, न ही मेहमान बनने की योग्यता. हां, ये जरूर है कि मैं एक बार खुद सूटेड-बूटेड पर्सन बनना चाहता हूं. उसकी वजह छोटी सी है. असल में जब मैंने तरतीब से अपने उलझे बालों, क्यारी-सी मूछों और सलवटी कमीज-पतलून के बटनों को टांका था, संवारा था तो मैंने पाया कि मेरे बाबूजी ने मुझे 'एक' के साथ परिणय सूत्र में इस कदर पिरो दिया जैसे कमीज के छोटे बने काज में जबरदस्ती बटन घुसेड़ दिया जाता है.

तब, बाबूजी ने अपनी बड़ी, काली शेरवानी को 'मां' से उधड़वाकर गली के सेकेंड हैंड 'न्यू स्टाईल टेलर्स' से मेरे लिए डबल ब्रेस्ट का कोट बनवाने की सार्वजनिक घोषणा की थी. मैं बहुत रोया था, मन ही मन, बाहर से रोता तो लोग कहते, बच्चू के दूध के दांत गिनना जरा? मैं कहना चाहता था, जो किसी ने नहीं सुना, मेरे एक ब्रेस्ट भी नपनी नहीं, ये डबल ब्रेस्ट क्यूं? मेरी पतलून, कमीज में बदरंग बटन ही क्या कम हैं, जो छह बटन के कोट को सिलवाया जा रहा है. 'एक' के

आवश्यकता नहीं रह गयी है, बल्कि ब्लाउज में सरकारी टांके की जरूरत है. वर्ष में छह माह तक शरीर के अंगों को अंदर-बाहर निकालने में जो कपड़ों की ओवरहालिंग होती, उससे बच्चों की जिंदगी में पुनः खाकी नेकर, नीली स्कर्ट के साथ सफेद शर्ट की आवश्यकता दिखने लगती. वो तो ठीक था कि पत्नी की साड़ी नीली या सफेद नहीं होती थी, वर्ना वह भी कटपीस की तरह हो जाती. बाबूजी की शेरवानी से बना मेरा डबल ब्रेस्ट कोट. मेरे कोट से सुविधा की जैकट. जैकट से अंकुश की बंडी. बंडी के रूमाल भी बन जाते, अगर गर्म ऊनी धागों में एकता रह जाती और 'नीडी' की बहती नाक भी पुंछ जाती. सुविधा-अंकुश की 'रिपब्लिक डे' परेड पर मेडिकल सर्टिफिकेट जाता और सुबह की शिफ्ट वाली नीडी के लिए रियायत लेकर दोपहर की शिफ्ट दिलानी पड़ती.

तनख्वाह एक क्लर्क की कितनी होती है, ये आप न जानें तो ठीक है, वर्ना आप भी मेरी तरह दुखी होंगे कि कैसे-कैसे परिवार चलते हैं, चल रहे हैं, चलते रहेंगे.

अभी तक तो मेरा मानसिक संतुलन बना है. तभी आज मैं भारत की राजधानी में रेलवे प्लेट फार्म नंबर सत्रह पर एक तरफ से घिसी हुई एड़ी के जूतों पर खड़ा हूं तो सर्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

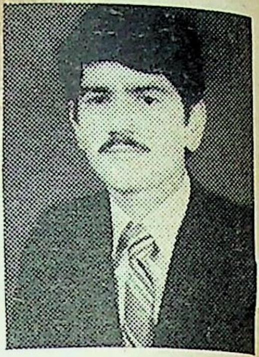

▣ डॉ. यश गोयल. जन्म : 6 फरवरी, 1956, फिरोजपुर (पंजाब) जोधपुर विश्वविद्यालय से वनस्पतिशास्त्र में एम. एस-सी., पी-एच. डी. कुछ समय स्वतंत्र पत्रकारिता करने के बाद संप्रति टेक्सास ए. एंड आई. यूनिवर्सिटी, किंग्सविले (अमरीका) में वनस्पतिज्ञ. किसी बड़ी पत्रिका में छपने वाली यह पहली कहानी है.

को अन्य प्रांतों में गाड़ियों के द्वारा सफर करते देख रहा हूं. रात के बारह बज चुके हैं, यह प्लेटफार्म की छत पर बने लोहे के गर्डर से ठंडी गोल घड़ी बता रही है. मैं मिल्ट्री का सेकंड-हैंड कंबल लपेटे बेंच पर एक कोने में दुबका बैठा हूं. पास ही एक निर्धनतम व्यक्ति हड्डिया-सा सिकुड़ा पड़ा है. अगर कंबल पैर की अंगुली में फंसा होता है तो सर्दी के हवाई टुकड़े कुछ देर के लिए मेरे माथे से टकराते हैं. अगर मैं कंबल सिर से तान लूं तो पैरों से पूछते हैं. सर्द टुकड़े पहचानते हैं, फिर टुकड़ों में बंटकर अगली बेंच पर धावा बोल देते हैं, एक साथ एकजुट होकर.

आप यह भी टिप्पणी करना नहीं भूलेंगे कि जब मेरे पास नया कोट नहीं तो मैं राजधानी आया क्यों? सही है टिप्पणी-कारजी, बिना कुत्ते के काटे कोई पेट में सुई लगवाता है भला! आपको सही-सही बता दूं, आप काफी आतंकित नजर आ रहे हैं मेरे इस उतरे हुए कोट से! मैं ठहरा रेलवे का एक क्लर्क. न लोवर, न अपर.

अब भला भारतीय रेलवे को क्या मालूम कि मेरे घर की अंगीठी पर रेलवे के पत्थर के बुझे कोयले जलते हैं. फल-सब्जी के नाम पर पार्सल घर में बैठा मित्र बाबू काम आता है. उसे क्या मालूम कि मेरे पास सर्दी से बचने के लिए कोट है या नहीं? कोई सर्विस की सी. आर. में तो लिखा जाता नहीं. रेलवे को तो तबादले करने हैं. कर्मचारियों की यूनियन-बाजी को तोड़ने का सुअवसर एवं बेहतरीन तरीका है स्थानांतरण. पता नहीं, रेलवे मंडल को कैसे पता चल गया कि बाबू रिक्तप्रसाद यूनियन के सक्रिय कार्यकर्ताओं के प्रमुख हैं. मैं यूनियन का महामंत्री या सचिव भी बन जाता, अगर मेरे पास रात की सर्द शिफ्ट में टूल डाउन कराने के लिए लंबा, काला, बड़े कालरवाला, नेपालियों से खरीदा हुआ ओवर कोट होता. मैं यूनियन का सदस्य होते हुए भी नारे लिखा करता था––मांगों के नहीं, भूख के, कोट के, अपने घर की ढहती दीवारों की छत पर.

प्रेमचंद की पूस की रात याद आ रही है. मुझे लाकर पटका भी तो यहां राजधानी में. जहां सर्दी पहले पहुंचकर देर तक विश्राम करती है. मुझे यहां राजधानी में अपनी पत्नी की याद सताने लगती है. वो भी इसलिए कि उसकी गर्माहट की उपयोगिता यहां बेंच पर पड़े हुए, ट्रेन के इंतजार में तीन घंटे बिताने के लिए महसूस हो रही है. यही नहीं, बच्चे भी, जो हम दोनों के चारों ओर किसी कंबल की तरह बिछ जाते थे. और सर्दी हमारे ऊपर कुछ देर ठहरकर पड़ोसी के घर चली जाती थी.

मैं, घर, अपने शहर लौट रहा था. जेब में पड़ी तनख्वाह से एक पैर की पिंडली जरूर गर्माहट महसूस कर रही थी, मगर उसी रफ्तार से डर रही थी, कहीं कोई चीरा न लगा दे. इस अनियतकालीन सर्दी से नाक में से पानी-सा रिसने लगा था, जो बेतरतीब होंठों पर बनी बालों की क्यारी से फैलकर पीले दांतो को छूने लगा था. मैं हर सांस खींच-खींचकर हांफ रहा था.

मैं इसलिए नहीं लौट रहा था कि मुझे कोट का बदला पत्नी की गरमाहट से लेना था या अपने पुराने टेलर्स से नया कोट सिलवाना था, बल्कि इसलिए कि बाबूजी की पहली बर्सी थी. यह तो निश्चित था कि अगर बाबूजी जिंदा होते तो इस बार भी सर्दी के लिए उतरा हुआ कोट ही पहनता. ☐

● 242, शिव रोड, रातानाड़ा, जोधपुर–342001

रिश्वत

● सुखबीर

अफ्रीका में बहुत-सी गरीब स्त्रियां प्रसव काल में मर जाया करती थीं. ऐसे मौकों पर वे किसी डॉक्टर की सहायता नहीं लेती थीं, क्योंकि उनका विश्वास था कि इससे नवजात शिशु को दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ता है.

इस बारे में श्वाइट्जर ने लोगों को बहुतेरा समझाया, लेकिन किसी पर भी उनकी बातों का असर न हुआ. मौतें उसी प्रकार होती रहीं.

आखिर श्वाइट्जर को एक तरकीब सूझी और उन्होंने एलान किया कि जिस किसी भी बच्चे का जन्म उनके अस्पताल में होगा, उसे पहनने के लिए वे एक टोपी और वस्त्र देंगे.

यह 'रिश्वत' अपना कमाल दिखाने से न रही और गर्भवती स्त्रियां काफी बड़ी संख्या में अस्पताल में आकर बच्चों को जन्म देने लगीं. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे जब शाम को साढ़े चार बजे के लगभग रसोईघर में गैस के चूल्हे पर चाय का पानी रखते हैं तो बाबू बिशनदास बाहर खुले रास्ते पर घूमने के लिए निकलने की तैयारी में लग जाते हैं. जब तक उनके बैठनेवाली कुर्सी के पास मेज पर चाय की प्याली लाकर रखते हैं, तब तक वे हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदलकर तैयार हो चुके होते हैं.

लेकिन आज काफी देर हो गयी थी. चाय बनाने के लिए अभी तक तो रसोईघर में कोई नहीं गया था. अगर घर में और कोई दिखाई नहीं देता था तो उसकी घरवाली तो थी, पर वह भी रसोईघर और कमरों के बाहर, बीच लॉबी में चौकी पर बैठी रात के खाने की तैयारी में लगी थीं—आलू छील रही थीं और उनके आगे अभी छीलेने के लिए मटर का ढेर लगा था.

बिशनदास ने अपनी पत्नी की ओर एक सर्द नजर से देखा. उसी समय उन्होंने अपने होठों पर एक हल्की मुस्कराहट भी फैला दी. आखिर वह उनके बेटे और बेटी की मां थीं, उनकी बहू की सास थीं और घर परिवार के समूचे सरिश्ते की मालकिन थीं, लेकिन उनकी पत्नी ने उस हल्की मुस्कराहट

मोतीलाल जोतवाणी

वक्त का जंगार

की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और उनसे अपने पति की सर्द नजर का गुस्सा छिप नहीं सका.

बिशनदास ने पूछा, "क्यों, आज ये सब कहां चले गये?"

उनकी पत्नी ने जवाब दिया, "तुम्हारी बहू दोपहर को बच्चे को साथ लेकर अपने मायके गयी है. कह रही थी, छः बजे तक आ जाऊंगी. और तुम्हारी लाड़ली बेटी अभी कालेज से नहीं लौटी है. उससे पूछेंगे तो एकदम कहेगी, आज क्लास के बाद अपनी सहेली के यहां गयी थी या आज कालेज में एन. सी. सी. की परेड में हिस्सा लेना था.

बिशनदास से रहा न गया, उन्होंने गुस्से से कहा, "लेकिन घर में तुम भी तो हो."

"मेरी बनाई चाय तुम्हें अच्छी लगेगी नहीं, फिर क्यों उठकर बनाऊं?"

बिशनदास के चेहरे पर परेशानी जाहिर हो उठी. उन्होंने पूछा, "क्यों लछमी, तुम्हारी बनाई चाय क्यों नहीं अच्छी लगेगी?"

लछमी भड़क उठी. बोली, "हां, ऐसा ही है. अब तुम्हें मेरी बनाई चाय पसंद नहीं है."

एक क्षण के लिए बिशनदास ने अपनी पत्नी की आंखों में निहारा और कारण जानना चाहा, परंतु शीघ्र ही उन्हें लछमी के 'अब' शब्द पर दिये गये बल के कारण का पता चल गया. उनके होठों पर से मुस्कराहट गायब हो गयी और उनकी भौंहों में टंगी सर्द नजर ज्यादा सर्द हो गयी, गोया वे आंखें न थीं, बर्फ के दो टुकड़े थीं. उन्हें अचानक ही याद हो आया, पिछली रात उन्होंने तो केवल मजाक में अपनी पत्नी को कहा था, "लछमी, तुम अपने मुंह की प्लास्टिक सर्जरी कराकर ये झुर्रियां क्यों नहीं मिटा देतीं? और अपनी

आदमी जब तक काम में लगा रहता है, सब कुछ भूले रहता है और धीरे-धीरे नौकरी उसकी आदत बन जाती है, लेकिन इस पकी हुई आदत में व्यवधान पड़ने से पैदा हुआ खालीपन मौत जैसा ठंडा और तकलीफदेह होता है. उसी तकलीफ के एहसास की सिंधी रचना——

कमर के पास पिलपिले मांस का लोंदा नहीं घटा देतीं?" उस समय लछमी ने उनके ज्यादा चुस्त बदन की ओर एकबारगी देखा था और वे गुस्से में करवट बदलकर सो गयी थीं.

बिशनदास चुपचाप घर से बाहर निकल आये. सदा की तरह सामने वाले पार्क में आसपास के क्वार्टरों के बच्चे खेल खेल रहे थे. सरकारी दफ्तरों में नौकरी करनेवाले लोगों में से कई अपने घरों को लौट रहे थे. उनमें से बहुत सारे कम उम्र के थे. . . दफ्तर में साढ़े चार बजे नहीं कि ये ये लोग घर वापस जाने की तैयारी में लग जाते हैं. फिर वे टायलेट में जाकर हाथ-मुंह धोकर बालों में कंघी करेंगे. हाथ में खाली लंच बाक्स लेकर निकल पड़ेंगे. लड़कियां और औरतें पर्स ले स्पेशल बसों के लिए आकर बस-स्टापों पर खड़ी होंगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिशनदास ने उन्हें एक नजर देखा. वे युवकों और युवतियों के लिए अजनबी थे. उन्होंने सोचा, हां, वे उनके बेटे को अवश्य ही जानते होंगे. वे खुद भी पिछले साल तक सरकारी नौकरी में थे और वह सरकारी क्वार्टर रहने के लिए उन्हें मिला था, लेकिन अब वह उनके बेटे के नाम है. बरबस एक ठंडी आह निकल गयी. अब वे और उनकी पत्नी उस क्वार्टर के एक छोटे कमरे में रहते हैं, अब वे जिंदगी के मुख्य मजमून का हिस्सा नहीं, बल्कि उसके हाशिये पर हैं.

बिशनदास सादिक नगर से निकल कर बड़ी सड़क पर आ गये. थोड़ा-सा चलकर मूलचंद अस्पताल वाले फ्लाइ-ओवर की चढ़ाई पर आ खड़े हुए. सोचने लगे, इस साल यह फ्लाइ-ओवर बहुत अच्छा बना है. एशियाई खेलों की तैयारी के सिलसिले में दिल्ली का यह हिस्सा वाकई बहुत सुंदर हो गया है. क्या तो रौनक हो गयी है. पुल की ऊंचाई पर खड़े होकर उन्होंने नीचे रिंग रोड की ओर देखा. एक सीधी लकीर में रास्ता बसों, मोटर-कारों और मोटर-साइकिलों से खचाखच भरा था. उन्हें याद आया, आज जहां यह रिंग रोड है, वहां कभी एक कच्चा रास्ता होता था. तब उस रास्ते पर घोड़ा-गाड़ियां चलती थीं, साइकिलें होती थीं. देश के बंटवारे के बाद से अलग-अलग शहरों में ठोकरें खाकर दिल्ली में आ बसे थे. तब तक काफी देर हो चुकी थी और सरकार की ओर से देश-विभाजन से विस्थापित लोगों को लाजपत नगर में दिये गये मकान भर चुके थे. नहीं तो, उसका भी कोई अच्छा-खासा मकान होता. वे उसे आज फिर से बनवाकर कोठी का रूप दे देते. उन दिनों लाजपत नगर से सफदरजंग अस्पताल जाते तो तांगेवाला दो आने लेता था.

वे आगे बढ़े. सामने मूलचंद अस्पताल के घंटाघर की घड़ी शाम के साढ़े पांच बजा रही थी. उन्होंने सोचा, यह घड़ी इतने सालों से ऐसी की ऐसी चल रही है, लेकिन वे खुद रुक गये हैं. यह वक्त, वक्त नहीं है. वक्त एक जंगार है, जो जिंदगी को लगकर उसे जीर्ण-शीर्ष बना देता है. उन्हें रिंग रोड और उसके ऊपर के फ्लाइ-ओवर की रौनक में वक्त का जंगार दिखाई दिया.

अब बिशनदास का मन ज्यादा ही उदास हो गया. उन्हें आगे जाना अच्छा न लगा और वे पीछे मुड़कर वापस घर की ओर चल दिये. उन्होंने घर आकर देखा, मां-बेटी इत्मीनान से बैठकर चाय पी रही थीं. शीला चाय की प्याली बीच में ही छोड़कर रसोईघर की ओर भागी और वहीं से उसने अपने पिताजी से पूछा, "क्यों पापा, आज आप इवनिंग वॉक से जल्दी लौट आये?"

बिशनदास ने अपनी बेटी के सवाल का जवाब न देकर सवाल ही किया, "तुम इतनी देर तक कहां थीं?" शीला गैस के चूल्हे पर चाय रखकर रसोईघर से बाहर आयी. बोली, "पापा, मैं पिंकी के घर गयी थी. क्या तो उसका घर है. उसकी बहुत बड़ी कोठी है."

बिशनदास एक क्षण के लिए खामोश हो गये. फिर बोले, "बेटे, यह महज इत्तफाक है कि तुम इस घर में पैदा हुई हो और तुम्हारी सहेली पिंकी बड़े घर में पैदा हुई है."

और वे अपने मन के जंगल में कहीं खो गये.

इतने में लछमी ने उनसे मुखातिब होकर कहा, "बुढ़ापे में अपने बदन की प्लास्टिक सर्जरी कराकर हम चाहे जवान हो जायें, परंतु बुढ़ापे में अपने मन का क्या उपाय करें?"

बिशनदास चौंक उठे, उन्होंने लछमी की ओर देखा. वहां बैठी शीला ने दोनों की ओर देखा, परंतु लछमी अपने काम में लग गयी, जैसे उन्होंने किसी को कुछ कहा न हो. ऐसे मौके पर शीला को महसूस हुआ कि पापा और मम्मी दोनों के बीच कोई बात पहले से ही चल रही थी और अब उसे वह बात संदर्भ के बिना समझ में नहीं आयेगी. जब वह छोटी थी, तब ऐसे मौकों पर बातों के संदर्भ समझने के लिए जिद्द करती थी, परंतु अब वह दोनों के बीच में बोलना नहीं चाहती. ऐसे ही कुछ समझ में आ जाये तो ठीक है, अन्यथा वह ऐसी कोई बात समझने की कोशिश ही नहीं करती. वह चुपचाप ड्राइंग रूम चली गयी.

बिशनदास सोचने लगे. वाकई बुढ़ापे में अपने मन का क्या उपचार करें? उन्होंने देखा, लछमी के मन का बोझ हल्का हो गया था. पिछली रात से दोनों के बीच एक खिंचाव टंगा हुआ था. कल रात जब उन्होंने मजाक-मजाक में लछमी से कुछ कहा था तो लछमी ने उनके ज्यादा चुस्त बदन की ओर एक बार आंख उठाकर देखा था. अब फिर जब लछमी ने यह कहा तो बिशनदास ने उनकी ओर देखा और महसूस किया कि उनके अपने मन की तुलना में लछमी का मन ज्यादा दुरुस्त रहा था.

वे कुर्सी पर से उठे और उन्होंने शीला को आवाज दी, "शीला बेटे, तुम्हारा भाई दफ्तर से अभी आता ही होगा. जल्दी ही तुम्हारी भाभी भी आ जायेगी. . ." शीला ड्राइंग रूम से बाहर अपने पिताजी की बात सुनने लगी. बिशनदास ने बात पूरी करते हुए कहा, "तुम पीछे घर में ध्यान से बैठना. हम दोनों लाजपत नगर के सेंट्रल मार्केट हो आते हैं."

लछमी ने अपने पति की ओर शंकित दृष्टि से देखा और पूछा, "हम दोनों?" बिशनदास ने कहा, "हां लछमी, घर के लिए किरॉकरी आदि चाहिए. चलो, चलकर ले आयें." शीला ने मां के नजदीक आकर कहा, "हां मम्मी, वैसे भी तुम बहुत दिनों से बाहर नहीं गयी हो. हो आओ." लछमी ने फिर अपने पति की ओर देखा, शीला की ओर देखा और उठकर कपड़े बदलने के लिए बूढ़े-बुढ़िया वाले कमरे में चली गयी. □

● बी-14 दयानंद कालोनी, लाजपत नगर, नयी दिल्ली-24

लोक-कथा विशेषांक

'सारिका' 1 सितंबर और 16 सितंबर, 1984 के दोनों अंक 'लोक-कथा विशेषांक' के रूप में प्रकाशित कर रही है. आपकी तरफ से प्रेषित सामयिक परिवेश से मेल खाती देश अथवा विदेश की लोक-कथाओं का हम सहर्ष स्वागत करेंगे. —संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ भरतमुनि के वंशधर ॥

हिंदी नाटक पर गंभीरता से सोच-विचार करनेवाले चंद लोगों में एक हैं--मुद्राराक्षस. पिछले दिनों सूत्रधार और नटी की गैरमौजूदगी म जब वे दिल्ली पहुंचे तो मुठभेड़ सीधे अवधनारायण मुद्‌गल से ही हो गयी... और मुद्‌गल ने बातचीत की शुरूआत में ही सीधे-सीधे मुद्रा की नब्ज पकड़ते हुए कहा--

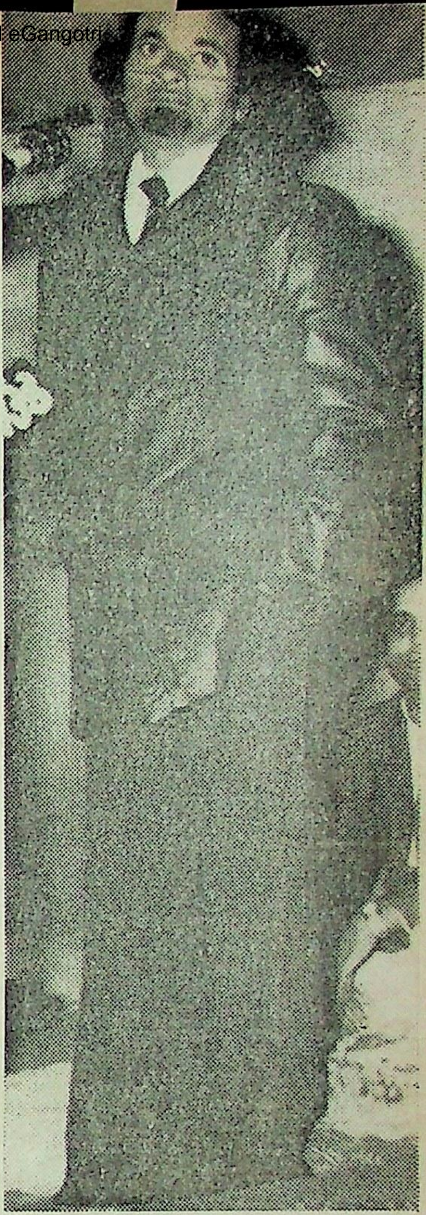

● मुद्राराक्षस की मुद्रा

▣ अक्सर लोग यह कहते हैं कि हिंदी में नाटक नहीं हैं... और जो नाटक हैं भी, वे स्टेज नहीं किये जा सकते. हिंदी में जो नाटककार हैं, वे उपन्यासों और कहानियों में असफल होने के बाद नाटकों में आये हैं और वे सफल नाटक नहीं दे पा रहे हैं. तुम इस बारे में क्या सोचते हो?

इस सवाल के दरअसल, दो पहलू हैं. आज जितने नाटक करनेवाले लोग हैं वो दो शब्द बड़े जोर से बोलते हैं...कि प्रोफेशनल काम नाटक में होना चाहिए. दूसरी चीज ये... कि जो शब्द आपने बोला था कि 'स्टेजवर्दी' नाटक होना चाहिए जो रंगमंच पर सफल हो. कभी किसी रचनात्मक, विधा में सफलता-असफलता का तो प्रसंग ही नहीं जुड़ता. यह नाटक का ही क्षेत्र हो सकता है जहां इतनी नासमझी की बात हो सकती है कि...नाटक करना प्रोफेशनल काम है. तो लाइट-मैन होते हैं. पिछले दस-पंद्रह सालों में ही इस तरह की नासमझी हावी हुई है... कि बत्ती अच्छी तरह जलाने-बुझानेवाला... मंच का अच्छी तरह विभाजन करके कंपोजीशन बना लेनेवाला ही अच्छा निर्देशक हो सकता है. ऐसा नहीं है. वह एक अच्छा व्यवस्थापक हो सकता है. लंबे अर्से में नाटक समझनेवाले निर्देशकों की ही कमी रही है. आप देखिए, ज्यादातर लोग वही नाटक करेंगे जिसे पहले ही बहुत से निर्देशक नयेपन के साथ कर चुके हों. सैमुअल बैकेट और सार्त्र का नाटक स्कूलों में भले ही कर लिया जाये पर वैसे नहीं किया जायेगा. 'अंधायुग' कर लिया जायेगा... क्योंकि अल्काजी कर चुके हैं तो अब इसमें फेर-बदल करना आसान है. 'खामोश अदालत जारी है' करना... 'तुगलक' करना आसान है. ये तो कहेंगे ही कि सक्षम नाटक नहीं हैं.

शहरी रंगमंच का षड्‌यंत्र लोक-रंगमंच की जड़ें नहीं जमने देता...

'सफल नाटक' का क्या मतलब है? जिसे देखकर बहुत-से लोग तालियां पीटने लगें! वह तो सफल नाटक नहीं हो सकता.

▣ 'सफल नाटक' का मतलब यह भी तो हो सकता है कि वह मंच की तकनीकी डिमांड्स के अनुरूप हो.

सच बताऊं, मंच क्या चीज है... यह निर्देशक नहीं जानता. बहुत फ्रैंकली मैं यह बात कहना चाहता हूं. नाटक का अंतरंग खोजकर निकालना और नाटक का भाष्य कर लेना ही उपलब्धि होती है. बत्ती अच्छी तरह जलाने-बुझाने के लिए यहां तो सफल प्रस्तुति को ही दुबारा करने की प्रवृत्ति हावी हो रही है. वैसे तो बहुत बड़े-बड़े रंगमंच के निर्देशक हैं पर जहां अल्काजी ने रंगमंच को पहुंचाया था, वहां से कोई एक कदम भी आगे नहीं ले गया है रंगमंच को. सब उसी का रिवीजन है. ये लोग सफल काम करने में रुचि लेते हैं. यानी जो काम 'शोले' फिल्म कर रही है, वो काम ये लोग करना चाहते हैं. यह तो रचनात्मक मांग नहीं है रंगमंच की. जहां तक हिंदी में नाटक न होने का सवाल है, मैं पूछना चाहता हूं कि हिंदी के नाटक पढ़े कितने गये हैं? वह कहेंगे कि सेठ गोविंददास, गोविंद बल्लभ पंत, प्रसादजी या उदयशंकर भट्ट ने जो नाटक लिखे वे तो छात्रोपयोगी नाटक हैं. मैं आपको बता दूं कि शेक्सपियर से ज्यादा गैरमंचोपयोगी नाटक किसी ने नहीं लिखे हैं. इस आदमी ने डेढ़-डेढ़ मिनट के दृश्य अपने नाटक में रखे हैं... और एक-एक अंक में पच्चीस-पच्चीस दृश्य-परिवर्तन होते हैं. इसने समुद्र और समुद्री जहाज तक. . .सब कुछ नाटक में दिखा दिया है. . . जबकि उसकी तुलना में जयशंकर प्रसाद ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कम दृश्य-परिवर्तन किये हैं. भूत और भूतनियां तक शेक्सपियर ने नाटक में दिखा दी हैं. आज तक लोग मगज-मारी करते रहते हैं कि भूत-भूतनियां कैसे दिखा दें. वह कवि बहुत अच्छा था पर नाटककार...

▣ भारतेंदु के समय से ही हिंदी में सशक्त और मंचोपयोगी नाटकों की उपस्थिति बनी रही है. फिर यह कमी किसकी कही जायेगी. . .कि भारतेंदु के बाद आज तक हजारों नाटक होते हुए भी उनका मंचन नहीं हो रहा. इसका जिम्मेदार कौन है?

निर्देशक. ज्यादातर निर्देशक अहिंदी-भाषी हैं. हिंदी में दूसरी भाषाओं का नाटक करना चाहते हैं. दूसरी भाषा में शंभु मित्रा ने, जब्बार पटेल ने या उत्पल दत्त ने एक नाटक कर लिया है... उसको हिंदी में कर लेना आसान है. हिंदीभाषी रंगमंच का निर्देशक है ही नहीं. जो रवैया हिंदी के बारे में दूसरी जगहों पर है, वही नाटक के क्षेत्र में भी है. मैं खासे निर्देशकों से मिल चुका हूं. अगर इनसे हिंदी के चार नाटककारों के नाम पूछ लीजिए तो वे बता नहीं सकते. या उनसे हिंदी के दस नाटक पूछिए. . .वे बता नहीं सकते. तो, यह कैसे कहा जा सकता है कि हिंदी में नाटक नहीं हैं. नाटक किया नहीं जा सकता, खेला नहीं जा सकता. एक चीज और है इन लोगों में, कितना डरते हैं ये लोग! पहले तो ये कहेंगे कि हिंदी का नाटककार रंगमंच के बारे में कुछ जानता ही नहीं है. और अगर नाटककार नाटक करना शुरू कर दे तो कहेंगे कि साहब आपको नाटक लिखना चाहिए आप नाटक कर क्यों रहे हैं? यानी इन लोगों की एक खास किस्म की प्रवृत्ति ही है कि साहब यह लेखक है. . . यह कुछ जानता ही नहीं. लेखक नाटक करने लगे तो कहेंगे आपको तो लिखना चाहिए. और लिखने लगे तो कहेंगे आपको रंगमंच की जानकारी इसलिए नहीं है कि आप नाटक करते नहीं हैं.

▣ बचपन में हम गांवों में देखते थे कि 'आल्हा' और 'ढोला' के गायक अलग-अलग होते थे. साज भी अलग था. जिस भंगिमा के साथ वे गायन करते थे. . . पूरा परिदृश्य उनकी आंखों और चेहरे पर उभरता था. कभी-कभी एक से ज्यादा लोग भी गायन में हिस्सा लेते थे. तो क्या वह एक तरह से नाटक नहीं था क्या? क्या उसे नाट्यरूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता? जन-विधा के रूप में मान्य यह विधा आज खोती जा रही है. . .

ठीक बात है. एक तरफ तमाम गाथात्मक साहित्य है, जिसका मंचन उस परंपरा से जुड़े हुए लोगों ने किया है. आधुनिक रंगकर्मी ने अगर उन चीजों को पढ़ा होता या उनकी संभावनाएं समझी होतीं. . . तो उनको किया भी होता. नाटक की भी बहुत लंबी परंपरा है. आपको तो याद होगा कि जब तक आगा हश्र कश्मीरी की जन्मशती नहीं मनायी गयी थी...तो कहा जाता था कि ये तो 'फारसी स्टाइल' हो गया. ये अतिनाटकीय हो जाता है. . . घटिया लेखन है. . . अब, जब नारायण प्रसाद बेताब या माधव शुक्ल का नाटक लोगों ने किया तब उनको पता लगा कि इसमें तो उतनी ही बड़ी क्षमताएं हैं कि वे मन को उसी तरह मथ सकती हैं. . . जैसे शेक्सपियर की रचनाएं.

▣ तुम लोक-नाट्य से ज्यादा जुड़े हुए हो. मैं जानना चाहूंगा कि हमारे यहां नाटक का जो एक अनुशासन दिया गया. . . उसे भी सोलह-सत्रह सौ साल तो हो ही गये. ईसापूर्व से ऐसे संकेत मिलते हैं कि नाटक किये जाते थे. . . फिर हम आज लो[क]-नाट्य स्थितियों को अपनाने के घटियापन कहकर क्यों खारिज क[र] कर देना चाहते हैं?

इसमें दो पहलू हैं. हमको ऐ[सा] लगता है. लोक-मंच को इ[स] भद्र-समाज ने सम्मान तो दिया है लेकिन बड़ा गलत सम्मान है. व[ह] उस तरह का है जैसे छब्बीस जनव[री] में हम कुछ झांकियां निकालते हैं. दे[श] की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते [हुए] उस तरह से कुछ तथाकथित प्रतिनिधि[त्व] करनेवाली चीजें लोगों के सामने ला[यी] जाती हैं. . . जैसे जन-नाट्य की प्रस्तु[तियां] तियां नकलीपन लिये हैं वैसी ही नकली होती हैं हैंडीक्राफ्ट की दुका[नें]

▣ लेकिन लोक-नाट्य की परंप[रा] तो बहुत पुरानी है!

दोनों परंपराएं हैं, शास्त्रीय रंगमंच [की] भी और लोक-नाट्य की भी. संस्[कृत] नाटकों में लोक-मंच के बहुत-से त[त्व] दिये भी गये हैं. लेकिन मैं एक बा[त] बहुत स्पष्ट बताऊं कि इन तमाम र[ंग]कर्मियों में से एक भी ऐसा नहीं है [जो] संस्कृत के रंग-दर्शन के बारे में अ[ास्था] नहीं रखता. उसको लगता है [कि] पंडिताऊ चीज है. . . चूंकि पढ़ा ही न[हीं] है. पढ़ा इसलिए नहीं कि मेहनत ब[हुत] लगती है पढ़ने में. यह भी बता दूं, [कि] उन्होंने अंग्रेजी का भी बहुत कुछ नहीं [पढ़ा] मैं दूसरी बात भी कहना चाहता हूं. [...] हो सकता है हमारे दूसरे मित्र बुरा [मान] जायें. . .पेंटिंग और म्यूजिक में भी [...]

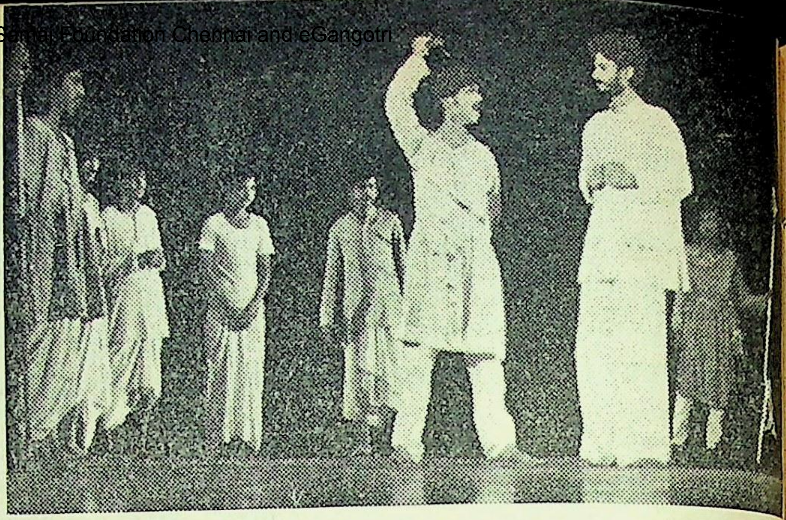

● मुद्राजी द्वारा निर्देशित नाटक 'डाकू' का एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह की जहालत हाजिर है. उन्हें भी सैद्धांतिक पढ़ने-लिखने या साहित्य के अंतरंग तक पहुंचने से कोई लेना-देना नहीं है... यानी आप अपने अतीत को भी नहीं जानते और अपने वर्तमान को भी नहीं जानना चाहते. रंगमंच को ये लोग वैसा देखना चाहते हैं जैसा इनके 'समझ के खाने' में आ रहा हो.

▣ भारतीय रंगमंच की इतनी समृद्ध-परंपरा होते हुए भी क्यों हिंदी रंगमंच मराठी, गुजराती या बंगाली रंगमंच की तरह समृद्ध नहीं हो पाया?

देखिए, जितने अर्थ में 'जात्रा' जीवित है.. .उससे अधिक अर्थ में उत्तर प्रदेश की लोक-विधाएं जीवित हैं. नौटंकी भरपूर जीवित है. इतनी अधिक. . .कि अगर किसी मेले में गुलाब बाई अपनी नौटंकी ले जाती हैं तो बेचारा फिल्म प्रदर्शित करनेवाला उनसे कहता है कि बाईजी अगर आप समय थोड़ा परिवर्तित कर लें तो हमारी फिल्म भी लोग देख लेंगे! फिल्मों से उनको खतरा नहीं है, उनसे आज भी फिल्मों को खतरा है. दूसरी विधा है 'रामलीला'. . . या 'धनुष यज्ञ'. गड़बड़ तो इस बात में हुई है कि इनके बारे में सही परख और पहचान नहीं है. पहचान इस अर्थ में नहीं है...कि नौटंकी आप करना चाहते हैं... नौटंकी करिए! आप 'आला अफसर' क्यों करते हैं उसमें! करेंगे आप नौटंकी के ढांचे में. . पर करेंगे ब्रेख्त का नाटक या शेक्सपियर का नाटक. न वह नौटंकी रहती है न शेक्सपियर का नाटक! आज बेईमानी का बहुत खूबसूरत तरीका हो गया है लोक-नाट्य. बहुत ज्यादा नाम तो लेना अच्छा नहीं लगता. . . आप लोक-नाट्य के नाम पर 'चीट' करते हैं. दिल्ली में आकर मैं 'भंगाष्टक' के नाम पर कुछ भी दिखा दूं. . . कौन ये फैसला करने जा रहा है कि यही भंगाष्टक नहीं है. 'जट-जटनी' के नाम से कुछ भी दिखा दूं. . . कौन इस बात का फैसला करने जा रहा है कि यह जट-जटनी नहीं है! या इसका मूल स्वरूप क्या है? न नौटंकी का छंद है न धुनें. उसके बावजूद वह नौटंकी है.

▣ मध्यम वर्गीय जैंट्री जो होती है... वह उत्तर भारत में नहीं जुट पायी है. . . नौटंकी होती है पर उसे अच्छे रूप में ले नहीं पाये हैं हम लोग.

दरअसल, हर क्षेत्र का अपना चरित्र होता है. उत्तर भारत के इलाके में रंगमंच के बारे में अच्छी धारणा मध्य-वर्ग में नहीं है. निम्न-वर्ग और उच्च वर्ग में हो सकती है. एक खास तरह की वर्जना है अभिनेय कलाओं के प्रति. हो सकता है वह उस समय से चली आ रही हो जब मनु महाराज ने यह लिखा था कि अभिनेताओं को शहर से बाहर ठहराया जाये. इसी वजह से रंगमंच के प्रति अच्छी रुचि नहीं है. 'लोक-नाट्य' यहां जीवित रह सकता था. . . पर लगता है कि उसे शहरी रंगमंच जीवित नहीं रहने देगा. गुलाब बाई को नाटक करने के लिए कोई पैसा नहीं देगा. . . जबकि 'संगीत नाटक अकादमी' और. . . उससे भी आगे 'फोर्ड फाउंडेशन' एक-एक नाटक करने के लिए डेढ़-डेढ़ लाख रुपये दे देगा. **रतन थियाम** को ऐसी ही एड मिलती है. **लाई अहरोबा** को लेकर वे विचित्र किस्म के प्रयोग करेंगे. . . यह तो वैसे ही हुआ कि आप 'रासलीला' को 'लैला-मजनूं' में करने लगें. शहरी आदमी करेगा तो बहुत पैसे पायेगा. . . और उस कर्म को करनेवाले हैं...उस कला के जो आचार्य हैं, उनको कुछ भी नहीं. शहरी रंगमंच के षड्यंत्र की वजह से लोक-रंगमंच अपनी जड़ें नहीं जमा पाता है.

▣ उत्तर भारत में लोक-नाट्य की तीन विधाएं हैं खास तौर पर. भांड़, नौटंकी और रास-नाट्य. इनमें बेसिकली क्या फर्क मानते हो?

'भांड़' इसमें से बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है. इसने सारी विधाओं को प्रभावित किया है. परंपरा ने फारसी रंगमंच को गति दी है. फारसी रंगमंच-शैली भांड़-परंपरा का विकास है. उत्तर प्रदेश में और भी बहुत-सी चीजें हैं. इस प्रदेश में इतनी लोक-विधाएं हैं जितनी भारत के किसी दूसरे प्रदेश में नहीं. (हालांकि सूचना विभाग को भी पता नहीं है इस बात का. . .) नौटंकी, स्वांग, सपेड़ा, रामलीला, रासलीला, गप्पाष्टक, भंगाष्टक, बिदेसिया, धनुष यज्ञ. . . इसके अलावा भी बहुत हैं. स्वांग के पीछे किसी की अच्छी तरह नकल कर सकना. . . और किसी का बहुत अच्छी तरह मजाक उड़ा सकना. . . सामर्थ्य के साथ आलोचना कर सकना उसका उद्देश्य होता है. भांड़-परंपरा का जो चरित्र है वही चरित्र स्वांग के पीछे भी है. स्वांग का इस्तेमाल महिलाएं 'नकटौरा' के रूप में करती हैं . . जिसमें पुरुषों को जाने की इजाजत नहीं होती है.

▣ अच्छा. . . ये बताओ, हिंदी के रंगकर्मियों में जो ये बात सुनायी पड़ने लगी है कि हिंदी के नाटकों का कोई भविष्य नहीं है. . .

मुझे भी नहीं दिखायी देता. . .और यह इसलिए कि निर्देशकों की जो स्थिति है, वह यही सोचने पर मजबूर करती है. भाई, थोड़ा-बहुत तो पढ़ा-लिखा होना जरूरी है. गुंजाइश इसीलिए नहीं है कि आप 'तुगलक' करते रहिए,बस!

▣ अच्छा, यह बताओ, हिंदी में तुमने कहा कि नाटक बहुत हैं. . . आज के नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से उल्लेखनीय तुम किन रचनाओं को मानते हो? खासकर, 75 के बाद!

हिंदी के कथाकार सिद्धेश ने एक संवादहीन पूर्णांग नाटक लिखा है—'चेहरों का जंगल.' सिर्फ अभिनय और चरित्रों का विकास है इसमें. यह साधारण प्रयोग नहीं है कि कई घंटे तक संवाद न बोला जाये और आप उसकी कथा देखिए. . . एक और आदमी था जिसका नाम है—सुदर्शन चोपड़ा. उसने कुछ बहुत अजीब-सी चीजें दे डालीं. भुनेश्वर को कितने लोग जानते हैं! जिसने उस जमाने में एब्सर्ड नाटक लिख डाले थे . . . जब हिंदी में क्या दुनियाभर में कोई एब्सर्ड रंगमंच के मूवमेंट को नहीं जानता था.

▣ इधर जो नये निर्देशक आ रहे हैं. . . उनके बारे में कुछ कहेंगे! जैसे रैना है, सथ्यू है, सत्यदेव दुबे. . .

सथ्यू हो सकता है. . . पर उसकी प्रस्तुति में भी रंगमंचीय क्षमता कम है. . . प्रोपेगेंडा ज्यादा है. जब कि उत्पल दत्त के बाद हबीब तनवीर ही ऐसा निर्देशक है जो आदर्श कहा जा सकता है. बाकी तो सब बत्ती जलाते-बुझाते हैं. ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला सामाजिकता की अभिव्यक्ति

▣ राजकुमार गौतम

हिंदी उपन्यास के इतिहास में यह कशिश अकारण नहीं है कि बारबार भटक जाने के बावजूद उसका मूल समाज और उसके आंचलिक संबंधों से लयबद्ध रहा है. व्यतीत दौर कथा विषयों से अपंग हिंदी उपन्यास का निकृष्टतम दौर कहा जा सकता है. नई कहानी और उसके बाद समांतर कहानी के जमाने तक कहानीकार तो ज्यों-ज्यों करके पैदा होते, जीते भी रहे; लेकिन उनमें उपन्यासकार भी होने की संभावनाएं लगभग अप्राकृतिक लगती रहीं. हिंदी का एक पूरा कालखंड जैसे उपन्यास-विहीन चला गया! ऐसा नहीं समझा जा सकता कि इन कहानीकारों का लक्ष्य उपन्यास लेखन नहीं रहा होगा, लेकिन उनके प्रयोजन चूंकि समग्र जीवन परिवेश मूलक नहीं रह गये थे, इसलिए एक विशेष मनःस्थिति वाले अनायक की फटी जेब में धंसकर रह गया था तब का पूरा हिंदी साहित्य. इस मारक और त्रासद वातावरण को हलाल करते हुए कुछ लेखकों ने, जो पिछले दस-पंद्रह वर्षों से ही सक्रिय हैं—वास्तविक समाज से वास्तविक रचनाएं थामीं और हिंदी उपन्यास की चुपचाप होती मौत को वक्त रहते रोक लिया. संदर्भतः कलात्मक रूप से सुसज्जित बोले गये झूठ-सच की सर्जनात्मक सफलता मृणाल पांडे के दूसरे उपन्यास **पटरंगपुर पुराण** में टोही जा सकती है.

उपन्यास का सहजबोध पटरंगपुर नामक एक पहाड़ी अंचल के भूत और वर्त्तमानपरक परिवेश में जन सामान्य की इच्छा और विरूपण की स्थितियों को रेखांकित करता दीखता है. आमा के माध्यम से यह औरत होने की शोषण-नियति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी व्यक्त करता अवतरित पुराण है, जिसके वक्तव्यों में कहीं कोई अस्पष्टता नहीं है. पुराण अर्थात् उपन्यास-कथा का वास्तविक केंद्र है—एक परिवेश का खात्मा और दूसरे, लगभग अनचाहे, परिवेश का आरोपण. मनीआर्डर के सहारे जीवन चलाते जाने की विस्थापित्य विवशता तथा परिवेश की पारंपरिक आत्मा के टूटते जाने का निर्बाधक्रम. आमा, जिसके अनुभव करने की क्षमताएं कहीं बंद नहीं होती हैं—वह इस लगभग अस्सी वर्षों के यथार्थ को कथा में प्रस्तुत करती है. सब कुछ एक अपरिहार्य परिवर्तन के तहत बदलता जाता है, मगर आमा के अनुसार औरत की स्थिति नहीं बदलती. आंचलिक बोली में कही गयी कथा की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के रहते विद्यमान समय में औरत को लेकर उठे अंतर्विरोध, विवशता और स्थापनाओं को भी यह किस्सागो रेखांकित करती है. परंपराओं की चापलूसी ही नहीं, परिवर्तन को स्वीकार करने वाली भी पहले नंबर पर आमा ही है.

इस कथा में पात्रों की एक पूरी टीम है, जो एक पूरा समाज प्रस्तुत कर सकी है. इस परिवेश में कहीं गलत हो जाने की एक आकृति उभरती है और फिर

मृणाल पांडे

आमा के सामने वह विश्लेषित व लगभग निरर्थक सिद्ध होकर ढह भी जाती है. ये स्थितियां औरत की नियति के समानांतर समाज, जनजीवन, संस्कृति तथा सर्कस-शो से लेकर वन कटाई तक—सभी सामाजिक राजनैतिक संदर्भों की कथा-खोल तैयार करती हैं और पाठक को वांछित द्वंद्वों में घुमाकर फिर पहाड़ी सरलता और नपे-तुले संकेत देने वाली आमा के पास खींच ले आती हैं. यहां परिवर्तन का हस्तक्षेप बिल्कुल बाहरी है, जो एक विपरीत संस्कृति का आक्रमण बार-बार पटरंगपुर पर करता है और बदनाम होती है तिवारिन की छींक!

इस उपन्यास की चिंता बाहरी संस्कृति के विरोध की नहीं है, बल्कि सीधे-सच्चे परिवेश की महान प्रकृति में उद्देश्यहीन भौतिक कुत्साओं के व्यापार को प्रवेश और मान्यता मिल जाने को लेकर है. रेशम के कारीगर और विलायत की सिविल सर्विस का सामाजिक द्वंद्व इस उपन्यास की अतिरिक्त आभा और समय के जोखिम को रेखांकित करने का सामाजिक उत्तरदायित्व सिद्ध होता है. आमा की कुछ खोजों के प्रमाण यहां हैं, जो इस परिवेशगत खतरे को और घना बना देते हैं. आमा द्वारा कही गयी, विशेषतया पहाड़ी औरत की यह कथा 'अनंत' है—नृत्य जैसी भंगिमा और छलांग या व्यायाम जैसी कला के अंतर्गत रहस्य भरे आकर्षण और रोमांच को हथियाये हुए. इसी के रहते यह उपन्यास परिवेश की कालकृति के साथ-साथ कलाकृति भी लगने लगता है और उपन्यास की संकीर्णतर उद्देश्य-वाली तथाकथित 'सामाजिक योजना' से अलग रहकर, कथा-सूत्रों में पिरोया हुआ एक बुझा आभूषण पहने-सा अवसाद पाठक को थमाकर समाप्त हो जाता है. दरअसल उपन्यास में आमा का व्यक्तित्व नायिका का नहीं बल्कि सचेत यथार्थ का सूचक है. आमा पटरंगपुर पुराण जानने का एक सुचारु माध्यम है, यह पुराण कहीं से भी छूटा रह न जाये;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमा के इस विवेक की चालाकी को भी संदर्भतः देखा जा सकता है: "हमारे इस पटरंगपुर शहर की कथाएं जो हैं ना, वो आजकल की कहानियों-कथाओं की तरह लैन-की-लैन नहीं चलतीं."

इस उपन्यास का एक अतिरिक्त सामाजिक तर्क भी है. तिवारिन की छींक हो ("क्या पनपा उसके बाद, शहर? कुछ नहीं पनपा.") या स्थिति विशेष में हुई किसी मौत द्वारा पांच मौतें और होने का स्थानीय तर्क—इस मानसिकता के प्रति यहां आस्था दिखाई पड़ती है. इन 'मूल्यों' के नकार का फैशन जब समकालीन साहित्य का लगभग फैशन बन रहा है, तब इस बोदेपन को कथा-सूत्र में बितुनकर पाठक को सौंप देना, जहां एक ओर मात्र खुश्क आंचलिक मुहावरा लग सकता है, वहीं कहीं अनायास घटनेवाली घटनाओं का यही एक स्वाभाविक तर्क भी हो सकता है. यह आमा की स्वीकृत सामाजिकता है, जिससे एतराज करने की गुंजाइश—आमा के प्रगतिशील सोच-विचारों द्वारा छीन ली गयी है. यह अवश्य कहा जा सकता है कि आमा परिवर्तन का स्वीकार काफी हल्के व बारीक ढंग से करती हैं, जबकि उनकी अवहेलनाओं के स्वर में नारीपन होता है. यहां वर्णित आंचलिकता का प्रभावशाली समीकरण आंचलिक औरत की मात्र आश्रयहीनता से ही नहीं, नारी की सदियों पुरानी शोषिता होने की परंपरा और लगभग नियति के घाल-मेल से तैयार है, जिस अभिशप्तता को नजरअंदाज नहीं, रेखांकित करने का सद्कर्म यह आमा का पुराण करता है.

वर्तमान की एक विराट त्रासदी को झिंझोड़ता हुआ उपन्यास है यह. इस अछूते विषय पर एक सबल स्पर्श इसमें आविष्कृत है, जो महिला जीवन की सच्ची और स्पर्द्धाओं के छद्म की व्यावसायिक संस्कृति से दूर मानव संबंधों की सहजता में घुन की तरह लगे प्रदूषण के खतरे को व्यक्त करता है. □

पटरंगपुर पुराण (उपन्यास) : मृणाल पांडे, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली

भाषा और कलात्मक रचाव की अपेक्षा

▣ मूलचंद गौतम

सच्चिदानंद धूमकेतु की प्रतिनिधि कहानियों (धूमकेतु की प्रतिनिधि कहानियां, प्रकाशक: भारती प्रकाशन, जिया सराय, नयी दिल्ली-110016, मूल्य : 48 रुपये) के माध्यम से उनके लेखकीय सरोकार, संवेदना और कलात्मक विकास की प्रक्रिया को जाना जा सकता है. आज भी बाबुओं, साहबों और मुंशियों के प्रदेश बिहार में गरीबों, अछूतों के शोषण का चक्र अत्यधिक अमानुषिक और भयावह है. बंधुआ मजदूरी की मालिक-चक्की में पीढ़ी-दर-पीढ़ी पिसते शनिचरा, छंगुरी, अमरितलाल और दुक्खी जैसे लोग केवल कहानियों में ही जीवित न होकर समाज के वास्तविक व्यक्ति हैं, जो लाख कोशिश और कठोर परिश्रम के बाद भी कर्ज के दलदल से उबर नहीं सकते. लंबोदर बाबू, तहसीलदार साहब, चुन्नू साह, रावे बाबू, फूल बाबू और मुंशी बिहारीलाल जैसे घाघों के हाथ और हथकंडों की पहुंच और पकड़ से निकलना उनके लिए निरंतर मुश्किल होता जा रहा है. उग्रवादी गतिविधियों के कारण पनपे तीव्र जाति-वर्ग संघर्ष के मूल में युगों से चले आ रहे शोषण का दबाव है, जिसे ये गरीब अब और अधिक झेल पाने में असमर्थ हैं, लेकिन इतने भारी जुए को यकायक कंधों से उतार फेंकना आसान नहीं है. गरीब और शोषितों में से ही उभरे दलालों की वजह से यह संघर्ष न केवल कमजोर होता है, वरन भविष्य में सिर उठाने की संभावनाएं भी लगभग समाप्त हो जाती हैं. 'खूनखोर' के शनिचरा, 'छिपे हुए हाथ' के छंगुरी, 'मुक्ति' के अमरितलाल, 'आखिरी कैफियत के बाद' के कारीलाल की पराजित-पस्त हो जाने की अंतिम नियति, 'टूटे कगार' के गोविंदा और रमना, 'अंजुरी भर राख' के धरमा और सुलछनी, 'अपने लोग' के गंगाराम, 'फफोले' के सुरजा और भोला, 'एक और आदिम युग' की फुलिया, 'असली हिन्दुस्तान' के भूदेव की अकाल मृत्यु और उसकी जवान बहन का पागलपन, जिस व्यापक यथार्थ का दृश्य प्रस्तुत करते हैं, उस संरचना में शोषण के विविध रूप, पहलू और उसके खिलाफ सक्रिय संघर्ष का एक विश्वसनीय आधार पूरी प्रक्रिया और जटिलता में उपस्थित हो जाता है.

देश और प्रदेशों में औद्योगिक विकास और आधुनिकता के साथ सत्ता और विपक्ष की राजनीति के फलस्वरूप जो नवधनाढ्य वर्ग अस्तित्व में आया है, शोषण के उसके हथकंडे पिछले सामंतों के मुकाबले कहीं अधिक अप्रत्यक्ष तथा घातक हैं, इस प्रक्रिया में सरकार के घोषित कागजी सूत्रों और नेताओं के कोरे भाषणों से भी पिछड़े और असुरक्षित तबके की हालत में कोई खास फर्क नहीं आता.

धूमकेतु की इन कहानियों में ग्रामीण परिवेश का उनका अनुभव, जो सृजनात्मक आकार ग्रहण करता है, इस प्रक्रिया में कुछ कहानियों में कहानीकार का हस्तक्षेप, तटस्थता या पात्रों पर अपने व्यक्तित्व का आरोपण, उन्हें कमजोर बनाता है. इससे कई बार कृत्रिमता और बनावट का संकट उत्पन्न हो जाता है. 'खूनखोर', 'अंजुरी भर राख' का त्वरित नाटकीय अंत 'एक और आदिम युग' की फुलिया का अकारण आत्मबलिदान और 'एक थी शकुन दी' की अध्यापिका-नुमा शकुन दी, कहानीकार की कमजोरी बन जाती हैं. कुछ-एक अच्छी कहानियों के बावजूद भाषिक संरचना और कलात्मक रचाव की अपेक्षा धूमकेतु से रहती है, जिससे कि उनकी अगली कहानियां पिछड़ी साबित न हों. अनुभव के विस्तार और कलात्मक विकास के बिना कहानीकार कदमताल करता रहे या कोल्हू का बैल बना रहे तो जाहिर है कि किसी तरह भी यह उसके रचनाकार के हित में नहीं जाता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कारों से साक्षात्कार कराती एक कृति

▣ विश्वंभर अरुण

'**बंधक आत्माएं**' लेखक के ही शब्दों में: 'यह उपन्यास है भी, नहीं भी है, क्योंकि इसमें वर्णित सभी घटनाएं सच्ची हैं, उनका कल्पना से दूर का भी संबंध नहीं.'

मेरे विचार से इसे संस्मरण की श्रेणी में रख सकते हैं, पर यहीं एक मौलिक प्रश्न खड़ा होता है. संस्मरण अब तक व्यक्तियों से संबद्ध रहते आये हैं. ऐसे व्यक्ति, जो कभी यहां थे, भले अब वे नहीं हों, पर '**बंधक आत्माएं**' के संस्मरण व्यक्ति नहीं, आत्माओं से संबंधित हैं—ऐसी आत्माएं, जिनके पूर्व जन्म के शरीरों से लेखक का परिचय तो नहीं रहा, पर उनके अशरीरी अस्तित्व से उसका पाला पड़ता है एक साधक 'ओम काली बाबा' के माध्यम से और आत्माएं ही क्यों, इस पुस्तक में ऐसे जीवों (अगर उन्हें जीव कह सकें) का भी वर्णन है, जिन्होंने कभी शरीर धारण किया ही नहीं और शायद कभी करेंगे भी नहीं, जो इस लोक से भिन्न किसी अन्य लोक के प्राणी हैं, जैसे परियां आदि. इन अशरीरी आत्माओं और परियों आदि का महज वर्णन रहता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी. लेखक ने दो वर्षों तक उनके द्वारा संपादित विभिन्न चमत्कारों का जो साक्षात्कार किया, वह अपने में अविश्वास की सीमा तक विस्मयकारी है, पर आप इन पर सहसा अविश्वास भी कैसे करेंगे? लेखक के स्वयं एक सम्मानित साहित्यकार एवं उच्च पदस्थ अधिकारी होने के अलावा इसमें जिन व्यक्तियों के साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं, वे भी कम विश्वसनीय व्यक्ति नहीं हैं.

पुस्तक की कथा श्री ओम काली बाबा के इर्द-गिर्द ही घूमती है. लेखक उस समय मुजफ्फरपुर नगरपालिका में विशेष पदाधिकारी के रूप में पदस्थापित है. बाबा एक सुबह उसके किसी परिचित के साथ आते हैं. दो खाली थालियां उसके घर से मंगवाते हैं, उन्हें कुछ दूर पेड़ के नीचे रखवा देते हैं और क्षण भर बाद ही वे मिठाइयों और सुपारियों से भर जाती हैं. लेखक उपर्युक्त घटना और उसके बाद की एकाध और घटनाओं से प्रभावित हो बाबा को अपने साथ ही रख लेता है. कुछ दिनों उन्हें अपने बंगले में, ड्राइंग रूम में ही रखता है, बाबा के लिए कंपाउंड के अंदर ही एक कुटी बनवा देता है. मिठाइयों के प्रकट होने से आरंभ हुआ चमत्कारों का सिलसिला पत्नी के लिए साड़ी एवं कपड़े के थान आने, इष्टों द्वारा भोजन ग्रहण करने, परी का पैर देखे जाने तथा अंततः बाबा के एक इष्ट राम नाथ बाबा के सशरीर प्रकट होने से होता है.

उपर्युक्त क्रम में ही एक बात और आती है. लेखक के बाबा को अपने साथ रखने का मूल ध्येय बाबा से इस विद्या को हासिल करना है, पर लेखक यह स्पष्ट किये बिना नहीं रहता कि बाबा ने आश्वासनों के बावजूद नहीं सिखाया और लेखक को बाबा के इस छल का दुख भी हुआ, जिसे उसने पुस्तक में छिपाया नहीं है. इससे यह भी स्पष्ट होता है कि केवल लेखक का ध्येय ओम् काली बाबा के व्यक्तित्व को अनावश्यक रूप में चमकाना नहीं बल्कि महज चमत्कारों का वर्णन है. पुस्तक में कहीं बाबा को बहुत बड़ा साधक, पूजा-पाठ अथवा तपस्या को समर्पित महात्मा अथवा आत्माओं, परियों के अलावा किन्हीं उच्चतर शक्तियों, देवी-देवताओं पर अधिकार प्राप्त व्यक्ति के रूप में नहीं दिखलाया गया है. यह एक बात है, जो निश्चित ही विषय के प्रति लेखक के तटस्थ दृष्किोण को उजागर करती है.

प्रश्न यह नहीं है कि पुस्तक में वर्णित घटनाएं किस हद तक सच्ची हैं, प्रश्न यह है कि बाबा जब तक जीवित हैं तो उनपर उचित वैज्ञानिक खोज-बीन क्यों नहीं होती? देश और देश के बाहर अनेक परामनोवैज्ञानिक

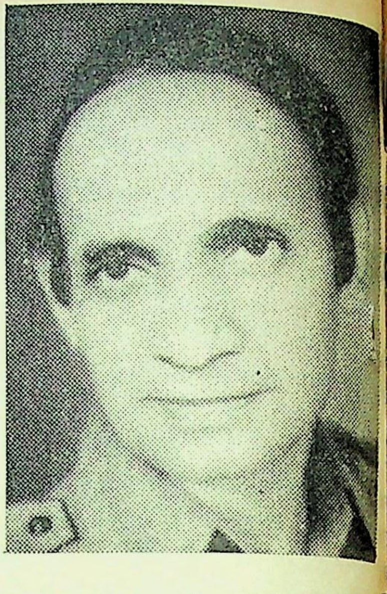

डॉ. भगवतीशरण मिश्र

संस्थाएं काम कर रही हैं और बहुतों को सरकारी अथवा संस्थागत अनुदान उपलब्ध होगा. बाबा जब डॉ. मिश्र के साथ दो वर्षों तक रह सकते हैं, तब अगर अनुकूल वातावरण मिले तो वह किसी शोध-संस्थान में भी कुछ समय बिताने को सहर्ष तैयार हो जायेंगे. ऐसी स्थिति में बाबा के संबंध में जो कुछ आयेगा, वह एक साहित्यकार की नहीं बल्कि वैज्ञानिक की कलम से निकल कर आयेगा और तब वह शायद अधिक प्रामाणिक लगेगा.

इस संबंध में ऊपर सुझाये गये तरीके से शोध संपन्न करने के लिए कोई संस्था आगे आये तो समाज के हित में ही होगा. स्वयं लेखक ने कहा है कि इन घटनाओं के माध्यम से उसे लोगों में अंधविश्वास भरना नहीं, बल्कि यह सिद्ध करना है कि जब छोटी शक्तियां हैं तो बड़ी भी हैं, भूत प्रेत हैं तो देवी-देवता भी हैं. वर्णित घटनाओं की सत्यता-असत्यता संबंधी ऊहापोह में नहीं भी पड़ें तो औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत यह कृति एक सांस में पढ़ी जाने योग्य है. □

▣ **बंधक आत्माएं : डॉ. भगवतीशरण मिश्र. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, मूल्य : 25 रु.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

ज्ञानपीठ पुरस्कार

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय उपन्यासों में **'चिकवीर राजेंद्र'** एक उल्लेखनीय उपन्यास है. कन्नड़ का यह उपन्यास मास्ति वेंकटेश आयंगार ने लिखा है, जो लेखन के क्षेत्र में 'श्रीनिवास' के नाम से सुपरिचित हैं. छोटी-सी रियासत कुर्ग के अंतिम शासक चिकवीर राजेंद्र के स्वार्थी, आरामपसंद, लापरवाह और दुष्ट प्रवृत्तियों से भरपूर जीवन के साथ-साथ रानी गोरम्माजी को अपमानित करने, अपनी बहन को कैद रखने और उसकी मौत का जिम्मेदार होने. . .अपने दोनों मंत्रियों की योग्यता की ओर से लापरवाह बने रहने. . .अंग्रेजों से टक्कर लेने के प्रयास में बुरी तरह मात खाने और अंग्रेजों द्वारा इंग्लैंड भेज दिये जाने. . . संदर्भ के ताने-बाने में बुनी यह कथा असल कुर्ग की ही नहीं, अठारहवीं शताब्दी के समूचे भारत की कथा है.

उन्नीसवें ज्ञानपीठ पुरस्कार (सन् 1983) के लिए इस कृति के रचनाकार का चयन निश्चित रूप से हर्ष का विषय है. यह रचनाकार केवल उपन्यास के क्षेत्र में चर्चित है. . . ऐसा नहीं है. काव्य, नाटक, आलोचना, कहानी और जीवनी-लेखन में भी इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है. सन् 1920 में प्रकाशित कहानी-संकलन 'केलेवु सण्णकथेगकु' के बाद इनके 17 कविता-संग्रह, तीन उपन्यास, 17 कहानी संग्रह, 18 नाटक और 46 आत्म-कथा, आलोचना पर किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं. बानवे वर्ष की आयु में भी यह रचनाकार लेखन से सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ है. 1914 में मैसूर लोक-सेवा में स्थान पाने के बाद महत्वपूर्ण प्रशासनिक सेवाओं में कार्य करते हुए इन्हें 1942 में 'राजसेवा प्रसक्त' की उपाधि दी गयी. 1943 में अवकाश ग्रहण करने के बाद अनवरत लेखन से जुड़े हैं. 'कन्नड़ साहित्य सम्मेलन' का अध्यक्ष-भार संभालने के साथ-साथ इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार तो मिला ही, साहित्य अकादमी की फेलोशिप भी मिली. 'इंडियन पेन' के अध्यक्ष के रूप में उल्लेखनीय कार्य किया. ग्राम्य जीवन पर उनकी सहज किंतु कलात्मक पकड़ बराबर सराही गयी है. मानवीय सहयोग और सहानुभति के जरिये जीवन को सार्थकता की ओर ले जाने पर श्रीनिवास बल देते हैं. कन्नड़ के ये चौथे लेखक हैं, जिन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है.

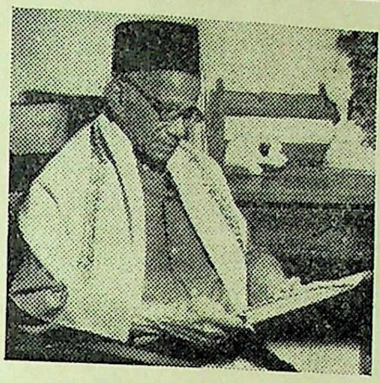

श्रीनिवास आयंगार

सन् 1944 में स्थापित ज्ञानपीठ पुरस्कार कन्नड़ के अतिरिक्त जिन भाषाओं के रचनाकारों को मिल चुका है, वे हैं—हिंदी (चार), बंगला (तीन), मलयालम (दो) तथा असमिया, गुजराती, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलुगु, उर्दू और पंजाबी (एक-एक) संप्रति इस पुरस्कार के लिए 'भारतीय ज्ञानपीठ' द्वारा संयोजित प्रवर परिषद के सदस्य हैं—श्री पी. वें. नरसिंह राव (सभापति), डॉ. नारायण मेनन, डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा, डा. सीताकांत महापात्र, श्री हयातुल्ला अंसारी, श्री गुलाबदास ब्रोकर, डॉ. एम. एच. नायक, डॉ. वी. आई. सुब्रह्मण्यम्, डॉ. शिशिरकुमार दास, श्रीमती दुर्गा जैन तथा लक्ष्मीचंद्र जैन.

पंजाब समस्या पर बातचीत

पंजाब की समस्या को लेकर उत्पन्न नयी परिस्थितियों का आकलन करने और ठोस कदम उठाने के लिए की गयी गोष्ठी का विषय प्रवर्तन करते हुए **श्री दीनानाथ** ने कहा कि मेरी दृष्टि में, जिसमें सच्चे दिल से अपनी बात कहने की जुर्रत हो, शब्द निर्भीक हों, वही बुद्धिजीवी कहलाने योग्य है. अब वह समय होगा कि अलगाव की भावना दूर हो. **श्री इंद्रकुमार गुजराल** ने कहा कि सरकार में सूझबूझ नहीं थी, अन्यथा तमाम हालात के बीच भी राजनैतिक स्थितियों को हल किया जा सकता था. **श्री दयानंद वर्मा** ने कहा कि जख्मों पर मरहम लगाने का काम हो, लेकिन वह अधिक वजनदार तब होगा, जब गुरुद्वारों के माध्यम से किया जाये. **नंदनजी** पिछले दिनों पत्रकार दल के साथ स्वर्ण मंदिर गये थे. उन्होंने बताया कि वहां सैनिक कार्रवाई के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था. सैनिकों के मारे जाने से यह भी स्पष्ट हुआ कि इतनी संख्या में हताहत तो पूर्ण युद्ध में भी नहीं होते. वहां सेना लंबे अरसे तक न रहे अन्यथा जनता का विश्वास टूट जायेगा. **श्री राजेंद्र अवस्थी** का कहना था कि सेना वहां अभी रहनी चाहिए. अभी वहां उग्रवादी शक्तियां गड़बड़ कर रही हैं. **श्री विष्णु प्रभाकर** ने कहा कि सरकार की पहल जरूरी है.

डॉ. महीप सिंह ने कहा कि हम ही कहते थे कि आतंकवादियों के साथ सख्ती से निबटा जाये. हमारी पक्षधरता न्याय के साथ थी. **श्री राजेंद्र माथुर** ने कहा कि आप (सिख) जितने भी नाराज हों, हम उसे झेलने के लिए तैयार हैं. यह वक्त जवाब देने का नहीं, सुनने और समझने का है.

श्री प्रभाष जोशी ने कहा कि मैं धर्म का पाबंद हूं. मैं धार्मिक भावनाओं से अभिभूत नहीं हूं. मैं संपूर्ण मानवता और उसकी अस्मिता की रक्षा की बात करता हूं.

गोष्ठी में सर्वश्री रामकुमार भ्रमर, विश्वनाथ, राजनारायण, रामदरश मिश्र, हिमांशु जोशी, डॉ. सरोजनी प्रीतम, सुशील वर्मा, नफीस आफरीदी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, देवेंद्र इस्सर, डॉ. हरदयाल, रानी छाबड़ा ने भी भाग लिया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका
सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता : 1984

पुरस्कार योजनाएं

कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 1500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 1000 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 750 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 400 रुपये प्रत्येक

लघुकथा प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 200 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 150 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 125 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 100 रुपये प्रत्येक

सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता : 1984

प्रथम पुरस्कार : 500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 400 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 300 रुपये
दस प्रोत्साहन पुरस्कार : 200 रुपये प्रत्येक

▣ **विशेष**

सारिका कहानी मंच के सदस्य अपनी रचनाएं सीधे हमें न भेजकर अपने महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में स्थापित मंच के संयोजक और संरक्षक के माध्यम से भिजवाएं, जिसमें प्रमाणित किया गया हो कि रचनाकार सारिका कहानी मंच का सदस्य एवं संस्थान का छात्र है. शेष नियम अन्य प्रतियोगिताओं की भांति ही लागू होंगे. छात्र-छात्राएं किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी के लिए अध्यक्ष, सारिका कहानी मंच, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं. वे अपनी रचना पर घर और संस्थान दोनों के पते लिखें.

नियमावली

1. **इस प्रतियोगिता में हिंदी एवं सभी भारतीय भाषाओं के कथाकार समान रूप से भाग ले सकते हैं, लेकिन रचनाएं हमारे पास हिंदी में ही भेजी जानी चाहिए.**
2. कहानी की शब्द-संख्या पांच हजार शब्दों से अधिक तथा लघुकथाओं की पांच सौ शब्दों से अधिक न हो तो [illegible] सुविधाजनक होगा.
3. पुरस्कृत कहानियों, लघुकथाओं के प्रथम प्रकाशन का अधिकार हर प्रकार से 'सारिका' के पास सुरक्षित रहेगा. पुरस्कारों की घोषणा संभवत: अप्रैल, 1985 तक कर दी जायेगी.
4. कहानी/लघुकथा मौलिक एवं हिंदी तथा किसी भी अन्य भाषा में अप्रकाशित एवं अप्रसारित होनी चाहिए.
5. **कहानी के साथ अपनी हस्तलिपि में यह प्रमाणपत्र भी भेजें—"मैं घोषित करता/करती हूं कि मेरी कहानी/लघुकथा (रचना का शीर्षक) मौलिक है एवं किसी भी भाषा में प्रकाशित अथवा प्रसारित नहीं हुई है. प्रतियोगिता का निर्णय घोषित होने तक इसे कहीं भी प्रकाशन अथवा प्रसारण के लिए नहीं भेजा जायेगा. मैं प्रतियोगिता के सभी नियमों से पूर्णत: सहमत हूं. —नाम, हस्ताक्षर एवं पता**
6. प्रतियोगिता में भेजी गयी रचनाएं लौटाना संभव नहीं होगा, अत: रचना की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें.
7. रचना के साथ चित्र एवं परिचय तथा पत्र आदि न भेजें. इस विषय में निर्णय होने तक किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार भी न करें.
8. **अपनी रचनाएं आप डाक से भेजने के अलावा 'सारिका कार्यालय' में 30 नवंबर, 1984 तक स्वयं आकर भी दे सकते हैं.**
9. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा.
10. इस प्रतियोगिता में बेनेट कोलमैन एंड कंपनी के कर्मचारी एवं उनके निकट संबंधी भाग नहीं ले सकते.
11. **रचना भेजते हुए लिफाफे पर पते की जगह नीचे प्रकाशित कूपन अवश्य चिपकाएं. आप जिस प्रतियोगिता में भाग ले रहे/रही हों, उसे छोड़कर कूपन पर बाकी शीर्षक काट दें. अन्यथा रचना प्रतियोगिता में शामिल नहीं की जायेगी.**

▣ **अंतिम तिथि : 30 नवंबर, 84**

सारिका
सर्वभाषा कहानी/लघुकथा प्रतियोगिता
10, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar